श्री राधासर्वेश्वरो जयति

।। श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः।।

वाशिष्ठ वचनामृत

वर्ष १ अंक १ १५ सितम्बर २००५ वि.सं. भाद्रपद २०६२ निम्बार्काब्द ५१०१)

मूल्य ५/- रू.

सम्पादकीय

प्रिय विज्ञ पाठकवृंद

आज यह तो हमारा दुर्भाग्य है कि हम आंग्ल पूजा में अंधे होकर अपनी सभ्यता, साहित्य, महापुरूषों को भी भूल गये है, आझाद भारत के इतिहास में यह समय काले पृष्ठों पर लिखा जाएगा कि हम खुलेआम राष्ट्रभाषा का अपमान कर रहे हैं । आंग्ल भाषा का प्रयोग, आंग्ल साहित्य की बिक्री, दूर-दर्शन, आकाशवाणी पर आंग्ल का ही बोलबाला यह सब कुछ क्या है ? ''क्या भारतवासी यह बात भूल गए है कि जब सारे विश्व से हजारों विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने के लिए भारत आते थे ? '' कितने दुःख की बात है कि आज से हजारों वर्ष पहले (पूर्व) जब इस संसार में विद्या का कहीं नाम तक नहीं था, उस समय भारत में सैंकडों महान् ग्रंथो की रचनाएँ की गई ।

वैसे तो भारतीय भाषाओं में साहित्य के न समाप्त होने वाले अथाह भंडार भरे पडे है । संस्कृत भाषा की देन केवल भारत के लिए ही नहीं, बल्कि पूरे विश्व के लिए अमूल्य हैं। इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि संस्कृत ही विश्व की एक मात्र ऐसी भाषा रही है जिसने सर्वप्रथम विश्व साहित्य को अमर कृतियों से लाभान्वित किया ।

संरक्षक - *अनन्त विभूषित श्री युगलशरणजी महाराज*
(आयुर्वेद मर्मज्ञ)
स्वत्वधिकारी (स्वामी)- **गौमुख वशिष्ठ आश्रम**
मुद्रक / प्रकाशक -
भक्त वत्सलशरण
सम्पादक :-
किशनबाबु प्रजापति
विधि सलाहकार
गोविन्दप्रसाद राखेचा (अधिवक्ता)
प्रकाशन स्थल -
गौमुख वशिष्ठ आश्रम-अर्बुदाचल (आबू पर्वत)
जिला-सिरोही (राज.) पिनकोड-307 501
पो. बाक्स नं. 25. दूरभाष (02974) 224217
Internet-WWW.GAUMUKH.ORG

आंग्ल भाषा के अंधे पुजारियों को यह मान लेना चाहिए कि भारतीय विद्वानों ने इस दुनिया को सदा से शिक्षा मार्ग दिखाया है । भारतीय भाषाओं को यह केवल अपनी ज्ञान प्रकाश शक्ति से जिन्दा रही है और भविष्य में भी पहले से अधिक फूलेगी । हिन्दी भारतीय जनता की भाषा है । इसे कोई दबा नहीं सकता यही एकमात्र भाषा है जिसे राष्ट्र-भाषा माना गया है । हिन्दी लेखकों पर भी यह जिम्मेदारी आती है कि वे इस भाषा साहित्य को अधिक से अधिक योगदान देकर जनता तक पहुंचाए सरल हिन्दी की रचनाएं ही इसे जनता की भाषा बना सकती है । कठिन संस्कृत जैसी हिन्दी केवल कुछ विद्वानों को उपाधियां दिला देगी या वे अपने को स्वयं विद्वान समझकर दिल खुश कर लेगें । बस इससे अधिक और कुछ वे भाषा और साहित्य को नहीं दे पाएगें । भाषा अपने भावों को प्रकट करने की सशक्त माध्यम है इस की महत्ता को बनाये रखना मानव जीवन का परम पुनित कर्तव्य है इसी आशा के साथ ।

जय श्री कृष्ण ।

किशनबाबु प्रजापति

अनुक्रमणिका

1.	ईश प्रार्थना	3
2.	श्री योगवशिष्ठ	4
3.	उपासना का तत्वज्ञान	6
4.	तृप्ति	7
5.	तिलक का महात्मय	8
6.	कहाँ रह गई है मानवता	9
7.	रामचरित मानस की महत्ता	10
8.	शाकम्भरी देवी की महिमा	11
9.	गीता, कर्मो का सांस्कृतिक प्रभाव	12
10.	साक्षात्कार	14
11.	मंद, तीव्र, अतितीव्र...	15
12.	यथार्थ दर्शन	16
16.	श्री योग वशिष्ठ महारामायण (गुजराती)	17
17.	कविताएं	19

मूल्य 5/- रुपये

प्रिय पाठकों ''वशिष्ठवचनामृत'' आपकी अपनी पुस्तक हैं, इसे और अधिक सुन्दर व आकर्षक बनाने हेतु आपके धार्मिक लेख, कथा, कविता, इत्यादि की अपेक्षा की जाती हैं।

वशिष्ठ वचनामृत

श्री राधासर्वेश्वरो जयति

।। श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः।।

वन्दे वशिष्ठसत्यगुरूं, वन्दे जगत् विख्यातम्।
वन्दे रघुकुल तारकं मोक्षगुरूं, वन्दे अरून्धतिपतिम्।।

शोधपूर्ण, ऐतिहासिक, धार्मिक, हिन्दी/गुजराती मासिक पत्रिका

वर्ष 1 अंक 1(वर्ष-५ अंक-१२)15 सितम्बर 2005 (वि.सं. भाद्रपद 2062 निम्बार्काब्द 5101)

ईश प्रार्थना

नव नव रंग त्रिभंगिये, श्याम सु - अङ्गी श्याम । जय राधे जय हरि प्रिये, श्री राधे सुख धाम ।।
जय राधे जय राधे राधे जय राधे जय श्री राधे । जय कृष्ण जय कृष्ण कृष्ण जय कृष्ण जय श्री कृष्ण ।।
श्यामा गोरी नित्य किशोरी, प्रीतम जोरी श्रीराधे । रसिक रसीलो छैल छबीलो, गुण-गर्वीलो श्रीकृष्ण ।।
रासविहारिणी रसविस्तारिणी प्रिय उरधारिणी श्रीराधे । नव नवरंगी, नवल त्रिभंगी श्यान सु अङ्गी श्री कृष्ण ।।
प्राण प्रियारी, रूप उजारी, अति सुकुमारी श्रीराधे । मैन मनोहर महा मोदकर सुन्दर वरतर श्री कृष्ण ।।
शोभा श्रेणी मोभा मैनी कोकिल बैनी श्रीराधे । कीरतिवंता, कामिनिकंता, श्रीभगवन्ता श्री कृष्ण ।।
चन्दावदनी, कुन्दारदनी, शोभा सदनी श्री राधे । परम उदारा, प्रभा अपारा, अतिसुकुमारा श्री कृष्ण ।।
हंसा गमनी, राजत रमनी, क्रीडा कमनी श्री राधे । रूप रसाला, नयन विशाला, परम कृपाला श्री कृष्ण ।।
कंचन वेली, रति रस रेली अति अलवेली श्री राधे । सब सुख सागर, सब गुण आगर, रूप उजागर श्री कृष्ण ।।
रमणी रम्या तरूतरतम्या गुण आगम्या श्री राधे । धाम निवासी, प्रभा प्रकासी, सहज सुहासी श्री कृष्ण ।।
शक्त्याह्लादिनि अति प्रियवादिनि उरर उन्मादिनि श्री राधे । अङ्ग अङ्ग टौना, सरस सलौना, सुभग सुठौना श्रीकृष्ण ।।
राधानामिनि गुण अभिरामिनि हरिप्रियास्वामिनि श्री राधे । हरे हरे हरि, हरे हरे हरि, हरे हरे हरि श्रीकृष्ण ।।

(अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्री हरिव्यास-देवाचार्यजी महाराज द्वारा प्रसारित)

श्री योगवशिष्ठ

(गतांक से आगे)

किसी समय की बात है कि सुमेरू पर्वत के अग्निसदृश उत्तरीय शिखर पर अपने समस्त परिवार के साथ भगवान् शंकर बिराजमान थे । अपने परिवार के साथ बैठे हुए उमापति से साधारण आत्मज्ञान रखनेवाले महान् तेजस्वी विनम्र भृंगीशने, जो वहीं पर उपस्थित था, अंजलि बाँधकर पूछा- ''महाराज ! इस क्षणभंगुर जगद्रूपी घर के अंदर विश्रामसुख से किस आन्तरिक निश्चय का अवलम्बन करके मैं समग्र चिन्ताज्वर से मुक्त होकर निश्चलरूप से स्थित रह सकता हूँ''

भगवान शंकर बोले - अनध ! तुपम समस्त शंकाओं से रहित होकर अविनाशी अचल धैर्य का अवलम्बन कर महाकर्ता, महाभोक्ता और महात्यागी हो जाओ ।

भृंगीशने कहा - प्रभो ! ऐसे वे कौन से लक्षण है, जिन की प्राप्ति हो जाने पर पुरूष महाकर्ता, महाभोक्ता और महात्यागी कहा जा सकता है, उन्हें मुझ से भली भाँति कहिये ।

अहंता, पाप और मात्सर्य से रहित जो मननशील पुरूष उद्वेग से रहित हो शास्त्रविहित क्रियाओं का अनुष्ठान करता है, वह महाकर्ता कहा जाता है । जो कहीं पर भी स्नेह नहीं रखता, जो साक्षी के सदृश निर्विकार रहता है और जो न्याययुक्त प्राप्त कार्य का निष्कामभाव से आचरण करता है, वह पुरुष महाकर्ता कहा जाता है । उद्वेग और हर्ष से रहित जो पुरुष निर्मल समबुद्धि से शोकजनक परिस्थितियों में शोक नहीं करता और हर्षजनक परिस्थितियों में हर्ष नहीं करता, वह महाकर्ता कहा जाता है । जो ज्ञानवान् मुनि अपने प्रारब्ध से जिस समय जो भी कोई न्यायोचित कार्य प्राप्त हो जाय, उस समय उस कार्य को आसक्ति रहित हो करता है, वह महाकर्ता कहा जाता है । जन्म, स्थिति और विनाश में तथा उत्पत्ति - विनाशशील पदार्थों में जिस का मन सम ही रहता है, वह महाकर्ता कहा जाता है ।

जो किसी से द्वेष नहीं करता, जो किसी की अभिलाषा नहीं करता और जो प्रारब्ध के अनुसार न्यायमुक्त प्राप्त हुए सारे पदार्थों का उपभोग करता है, वह महाभोक्ता कहा जाता है । जो पुरुष अहंकार से रहित और परमात्मा में स्थित होने के कारण न्यायपूर्वक इन्द्रियों से विषयों का ग्रहण करता हुआ भी ग्रहण नहीं करता, कर्मों का आचरण करता हुआ भी आचरण नहीं करता, एवं पदार्थों का उपभोग करता हुआ उपभोग नहीं करता, वह महाभोक्ता कहा जाता है । जो पुरुष बुद्धि की खिन्नता से रहित होकर साक्षी के सदृश समस्त लोकव्यवहारों का किसी प्रकार की ईच्छा के बिना अनुभव करता है, वह पुरुष महाभोक्ता कहा जाता है । जैसे समुद्र नाना नदियों के जल को समान रूप से ग्रहण करता है, वैसे ही जो मनुष्य न्याय से प्राप्त बडे बडे सुख - दुःखों को समान रूप से ग्रहण करता है, वह महाभोक्ता कहा जाता है । जो पुरुष कडुए, खट्टे, नमकीन, तीखे, मीठे, खारे, स्वादु या अस्वादु भी न्याय से प्राप्त अन्न को समान बुद्धि से खा लेता है - वह महाभोक्ता कहा जाता है । काम्य कर्म, निषिद्ध कर्म, सुख, दुःख, जन्म और मृत्यु जिसने विवेकपूर्वक सर्वथा त्याग कर दिया है, वह महात्यागी कहा जाता है । सम्पूर्ण इच्छाओं, समस्त संशयों, वाणी, मन और शरीर की सभी चेष्टाओं तथा सम्पूर्ण सांसारिक निश्चयों का जिस पुरूष ने विवेकपूर्वक सर्वथा त्याग कर दिया है, वह महात्यागी कहा जाता है । वह जितनी भी सम्पूर्ण दृश्यरूप मन की कल्पना दिखाई दे रही है, उसका जिस पुरुष ने अच्छी तरह से त्याग कर दिया है, वह महात्यागी कहा जाता है ।

निष्पाप श्रीराम ! देवदेवेश भगवान् शंकरने बहुत दिन पहले भृंगीशको इस तरह का उपदेश दिया था । सदा प्रकाशमान, निर्मलस्वरूप, आदि और अन्त से शून्य केवल परब्रह्म ही है, ब्रह्म से अतिरिक्त कुछ भी पदार्थ नहीं है, क्योंकि इस संसार में जो कुछ भी प्रतीत होता है, वह सब कुछ कल्पों के कार्य का एक मात्र मूल कारण निर्विकार परमात्मस्वरूप परब्रह्म ही है । वह परमात्मा बड़े-बड़े अनेक सर्गो के विशाल आकारवाला होने पर भी वास्तव में आकाश के समान निराकार ही है । कहीं पर कुछ भी पदार्थ, फिर चाहे वह स्थूल हो, सूक्ष्म हो अथवा कारणरूप हो, सदा एकरस परब्रह्म भिन्न किसी तरह नहीं हो सकता, इसलिये तुम 'मैं सद्रूप ब्रह्म हूँ' इस प्रकार का अपने अंदर निश्चय करके स्थित रहो ।

अहंकार नामक चित्त जिस समय सर्वथा विलीन हो जाता है या विलीन होने लग जाता है, उस समय के वासनारहित अन्तःकरण क्या स्वरूप होता है ?

वासनारहित अन्तःकरण को बलपूर्वक उत्पन्न हुए भी - लोभ, मोह आदि दोष वैसे ही लिप्त नहीं कर सकते, जैसे कमलपत्रकों जल लिप्त नहीं कर सकते । अहंकार नामक चित्त और पाप के विलीन हो जाने पर पुरूष सदा शान्त प्रसन्नमुख रहता है । उस समय साधक की वासनाओं का समूह छिन्न-भिन्न सा होकर धीरे धीरे बिलकुल क्षीण होने लग जाता है । क्रोध और मोह का क्षय होने लगता है । काम और लोभ चले जाते हैं । इन्द्रियाँ और दुःख विकसित नहीं होते । ये सुख-दुःख आदि प्रतीत होने पर भी, तुच्छ होने के कारण, उस साधक के मन को लिप्त नहीं कर सकते । चित्त के विलीन हो जाने पर उस श्रेष्ठ साधक पुरुष की देवतागण भी प्रशंसा करते हैं । उस पुरुष के हृदय में शीतल चाँदनीरूपी समता उत्पन्न होती है । ऐसा श्रेष्ठ साधक पुरूष उपशान्त, कमनीय, सेव्य, अप्रतिरोधी (दूसरों की इच्छा का विघात न करनेवाला), विनीत, बलशाली और स्वच्छ श्रेष्ठ शरीरवाला होकर रहता है । जो बुद्धि की

तीक्ष्णता से प्राप्त करने योग्य है और जिस की प्राप्ति होने पर समस्त आपत्तियाँ अस्त हो जाती है, उस परमात्म - वस्तु में जो मनुष्य मोह के कारण प्रवृत्त नहीं होता, उस नराधम को धिक्कार है । दुःखरूपी रत्नों की खानि और जन्म - मरणरूप संसार-सागर के पार होने की इच्छावाले पुरूष को निरतिशयानन्दमय परमात्मा में नित्य निरन्तर समुचित विश्राम पाने के लिए ' मैं कौन हूँ' ' यह जगत् क्या है, परमात्मतत्व कैसा है ? इन तुच्छ भोगों से कौनसा फल मिलेगा ?' इन प्रश्नों पर विवेकपूर्वक विचार करना चाहिये । यही परम साधन है । इसलिये मनुष्य को उपर्युक्त साधन का आश्रय लेना चाहिए ।

तुम्हारे वंश के आदिपुरुष इक्ष्वाकु नामक राजा जिस प्रकार के विवेकपूर्वक विचार से मुक्त हो गये, उस विचार को तुम सुनो । अपने राज्य का परिपालन करते हुए इक्ष्वाकु नामक राजा किसी समय एकान्त में जाकर अपने मन में स्वयं यह विवेकपूर्वक विचार करने लगे कि 'बुढापा, मृत्यु, क्षोभ, सुख, दुःख तथा भ्रम से युक्त इस दृश्य - प्रपंच का हेतु क्या है ।' इस प्रकार विचार करते हुए भी वे जब जगत् के कारण को न समझ सके, तब उन्होंने एक दिन ब्रह्मलोक से आये हुए सभा में बैठे तथा पूजित हुए अपना पिता प्रजापति मनु से पूछा । आपकी दया ही आपसे पूछने के लिए मुझे प्रेरित कर रही है । 'यह सृष्टि कहाँ से आयी है, इसका स्वरूप कैसा है तथा कब किसने इसकी रचना की है ? यह आप कहिये । विस्तृत जाल में फँसे हुए पक्षीकी भाँति मैं इस विषम संसार जाल से किस प्रकार मुक्त हो सकूँगा ?'

तुम्हारे अंदर सुन्दर विकासयुक्त विवेक का उदय हुआ है, तभी तुमने यह प्रश्न किया है । यह प्रश्न किया मिथ्या संसार जाल का उच्छेद करनेवाला तथा सब प्रश्नों का सार है । यह जो कुछ जगत् दिखायी दे रहा है, वस्तुतः कुछ भी नहीं है । यह आकाश में प्रतीत होनेवाले गन्धर्वनगर की भाँति तथा मरूस्थल में प्रतीत होनेवाले जल की भाँति मिथ्या है । किन्तु जो अविनाशी परब्रह्म है, वही ''सत्' और 'परमात्मा' इत्यादि नामों से कहा जाता है । उस परमात्मरूप दर्पण में यह दृश्य रूप जगत् प्रतिबिम्ब की तरह प्रतीतिमात्र है । इसलिये वस्तुतः संसार में न तो किसी का बन्धन है और न मोक्ष है । केवल एकमात्र सब विकारों से शून्य ब्रह्म ही है । जैसे समुद्र में एक ही जल अनेक तरंगो के रूप में प्रतीत होता है, उसी तरह एक सच्चिदानन्दरूप ब्रह्म ही जगत् के अनेक रूपों में प्रतीत होता है। उस ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, इसलिये तुम बन्ध और मोक्ष से रहित होकर निर्भय - पदरूप परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त हो जाओ । अज्ञान की उपाधि से युक्त जीव कर्मानुसार सुख -दुःख और मोह आदि विकार मन में ही होते हैं, आत्मा में नहीं । परमेश्वर न तो शास्त्रों के स्वाध्याय द्वारा और न गुरू के द्वारा ही दिखायी देता है । वह तो अपनी सत्वस्थ - श्रद्धायुक्त पवित्र और स्थिर बुद्धि से ही अपने आप दिखायी देता है । इसलिये जैसे मार्ग में राग-द्वेषरहित बुद्धि से पथिक देखे जाते हैं, वैसे ही अपनी राग - द्वेषरहित बुद्धि से ही इन अपनी इन्द्रिय आदि का अवलोकन करना चाहिये । अपनी बुद्धि से देहादि पदार्थ मात्र का दूर से ही त्याग कर अपने अन्तःकरण को शान्तिमय बनाकर नित्य परमात्ममय हो जाओ । ' मैं ही देह हूँ' यह बुद्धि संसार में फँसानेवाली है । इसलिये मुमुक्षु पुरूषों को इस प्रकार की बुद्धिको कभी नहीं अपनाना चाहिये । मैं आकाश से भी सूक्ष्मतर सच्चिदानन्दमय हूँ - ऐसी जो नित्य अचला बुद्धि है, वह संसार - बन्धन से छुडानेवाली है । जैसे नूपूर, कंगन, कुण्डल आदि आभूषणों का आकार सुवर्ण ही है, वैसे ही माया के कार्यरूप जगत का आकार भी परमात्मा का संकल्प होने से परमात्मा ही है । अतः इस अनात्म देहादि दृश्यसमूह को आत्मा न समझकर और अन्तःकरण को वासनारहित करके गूढरूप परमात्मा में अनायास अचल स्थिर रहो । जैसे परिस्पन्द के कारण एक ही जल फेन, बुद्बुद और लहर आदि नाना प्रकार के आकारों में दिखायी देता है, वैसे ही अपने संकल्प से यह सच्चिदानन्द ब्रह्म ही नाना प्रकार के आकारों में प्रकट होता है । तुम संकल्परूपी कलंको से रहित चित्त को परमात्मा में स्थापित करके कर्म करते हुए भी कर्तापन के अभिमान से रहित, शान्त और सुखपूर्वक ब्रह्म के स्वरूप में स्थित हुए राज्य - पालन करो । जैसे चन्द्र, सूर्य, अग्नि, तप्तलोह एवं रत्न आदि के प्रकाश, वृक्षों के पत्ते तथा झरनों के कण कल्पित हैं, वैसे ही इस ब्रह्म में जगत् तथा बुद्धि आदि भी कल्पित ही हैं तथा वही ब्रह्म जगद्रूप होकर अज्ञानियों के लिए दुःखप्रद हो रहा है विश्व को मोह में डाल देनेवाली यह माया कैसी विचित्र है, जिसके कारण संपूर्ण अंगों में भीतर और बाहर सब जगह व्याप्त परमात्मा को यह जीव नहीं देख सकता । इसलिये अहंकार से रहित निर्मल सात्विक अन्तःकरण से 'सभी पदार्थ निराकार सच्चिदानन्द ब्रह्म ही है' - ऐसी भावना करो । ' यह स्मरणीय है और यह रमणीय नहीं है' - इस प्रकार की भावना ही तुम्हारे दुःख का कारण है । वह भावना जब सर्वत्र समदृष्टिरूपी अग्नि से जल जाती है, तब कहीं भी दुःख का नामोनिशान भी नहीं रह जाता । निर्वासनारूप अस्त्र से प्रियाप्रियरूप विषमता को परम पुरूषार्थ के द्वारा तुम स्वयं ही काट डालो । तुम निर्वासनारूप अस्त्र से वासनारूप कर्म - वन को काटकर सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर ब्रह्मभाव प्राप्त कर शोकरहित हो जाओ । तुम सदसद्वस्तु के विवेकरूप विचार से युक्त होकर समस्त कल्पनाओं से रहित हो जाओ तथा समस्त विशाल भुवनों को परमात्मा के स्वरूप से परिपूर्ण समझो । तदनन्तर जन्म - मरणरूप रोग से रहित होकर परब्रह्म परमात्मा के आनन्द का अनुभव करते हुए दीर्घकाल तक स्थिर रहो और समता तथा शान्ति से युक्त होकर निर्भय चेतन ब्रह्मस्वरूप बन जाओ ।

(क्रमशः)

उपासना का तत्त्वज्ञान

उपासना क्या है ? उपासना का तत्त्वज्ञान क्या है ? उपासना के तत्त्वज्ञान को प्राप्त करना अनिवार्य है । तत्त्वज्ञान के बिना आगे बात नहीं बढती है । ज्ञान की प्राप्ति श्रेष्ठतम और उत्कृष्टतम उपलब्धि है । आगे इससे बढकर है - इस प्राप्त तत्त्वज्ञान के अनुसार 'कर्म' करना क्योंकि तत्त्वज्ञान के अनुसार कर्म करने से ही वास्तविक लाभ प्रकट और प्रत्यक्ष होता है । ज्ञान ही केवल पर्याप्त नहीं है । बल्कि ज्ञान (तत्त्वज्ञान) के अनुसार और अनुकूल कर्म, व्यवहार तथा आचरण होना भी अनिवार्य है । और, इस अनिवार्यता की पूर्ति होने पर ही वास्तविक उपलब्धि उपासक के सामने परिलक्षित होती है, प्रकट होती है । अब बात आती है - उपासना की ।

'उपासना' में दो शब्द है : उप+आसन अर्थात् उप (समीप) और आसना (बैठना) । यानी समीप बैठना । समीप में बैठने को साधारण अर्थ में 'उपासना' कहते हैं । परंतु आध्यात्मिक क्षेत्र में इसके विशिष्ट भाव और अर्थ निर्मित हो जाते हैं । अध्यात्म तथा धर्म में किसी इष्ट (देवी-देवता) के समीप बैठने को 'उपासना' कहते हैं । अब प्रश्न उठता है - देवी शक्ति (इष्ट) अर्थात् परमात्मा, प्रभु, भगवान्, देवी, देवता, प्रत्यक्षतः और प्रकटतः दृष्टिगोचर होते नहीं है तब फिर उनके पास या समीप कैसे बैठा जाय ? इसके लिए हमारे ऋषियों, मुनियों, मनीषियों ने समाधान निकाल लिया है । संबंधित देवी चेतना (इष्ट) के अनुरूप मूर्ति, प्रतिमा तथा चित्र की कल्पना और भावना करके निर्माण करवाया है । उस संबंधित इष्ट (दैवी - शक्ति) के विग्रह (मूर्ति या चित्र) के पास या समीप बैठना श्रेयस्कर है । परंतु उस मूर्ति और चित्र के समीप बैठने को ही अध्यात्म में उपासना नहीं कहा जाता है । वास्तव में वह कल्पित और भावित मूर्ति या चित्र तो एक प्रतीक है । वह केवल समीप बैठने की सुविधा के लिए निर्माण करवाया गया है । वास्तव में समीप बैठना तो भावात्मक और मानसिक स्तर पर ही होता है । केवल स्थूल रूप से निर्मित मूर्ति या चित्र के समीप शारीरिक रूप से बैठने को ही उपासना नहीं कहते हैं । और केवल स्थूल रूप से प्रकृति में पैदा हुए फूल, पत्र, फल और नैवेद्य को ही प्रतिमा या चित्र के समीप अर्पित कर देने को भी उपासना नहीं कहते हैं ।

'उपासना' कहते हैं - भाव पूर्वक मन और अन्तःकरण को उस इष्ट (देवी - शक्ति) के अनुकूल और अनुसार बना लेने को। पूर्व से मन और अन्तःकरण में अगर कोई अतिरिक्त भाव है तो उसमें परिवर्तन करना ही अपेक्षित है । इस परिवर्तन के बिना उपासना की किया संभव नहीं है । अन्तःकरण के भाव और मनोभूमि के परिवर्तन के बिना उपासना का कर्म संभव नहीं हो सकता है । इष्ट को जो-जो प्रिय है उसी के अनुरूप, अनुकूल तथा अनुसार अपने भाव को बना लेना ही उस इष्ट के प्रति किया गया उपासना कर्म है ।

यहाँ 'माता लक्ष्मी पिता विष्णु' की उपासना करनी है । क्योंकि उनकी प्रसन्नता की प्राप्ति के लिए उपासना अनिवार्य है । तो यह अनिवार्य है कि 'माता लक्ष्मी पिता विष्णु' को जो भी प्रिय है उसके अनुकूल ही अपना भाव तथा आचारण को बनाया जाय। पूर्व के प्रसंग में यह विवरण तथा वर्णन आया है कि 'माता लक्ष्मी पिता विष्णु' को सत्त्व से संबंध है । यह कई ग्रन्थों से प्रमाणित है। लक्ष्मी और विष्णु को सत्त्व ही प्रिय है तो उपासक जब तक अपने मन, अन्तःकरण, शरीर आदि को 'सत्त्वमय' नहीं बना लेता है तब तक उसकी उपासना संभव नहीं है । अतः यह आवश्यक है कि उपासक अपना सब कुछ 'सत्त्वमय' बना ले अथवा अपना सब कुछ 'सत्त्व' से संबंधित और अनुशासित कर ले। 'सत्व' से संबंधित और अनुशासित करने का अभिप्रायः यह है - अपना आहार (भोजन अथवा खान-पान) सात्त्विक रखे । अपना रहन-सहन, वेशभूषा, मानसिक स्थिति वाणी (बोल - चाल) आदि सब कुछ सात्त्विक बना ले । 'गीता' में इस प्रकार आज्ञा स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण (विष्णु) ने सत्त्व अथवा सात्त्विक गुण एवं भाव से संबंधित आहार तप के लिए दी है।

अगर इस प्रकार भगवान् की आज्ञा (गीता) के अनुसार उपासक अपने सब कुछ सात्त्विक या सत्त्वमय बना लेता है तो उसकी उपासना पूर्ण होती है, और वह 'माता लक्ष्मी पिता विष्णु' को प्रसन्न करने में सफल होता है । और जब वह उन्हें प्रसन्न करने में सफल हो जाता है तब उनके द्वारा जो देय (वरदान) है उसे प्राप्त करने में भी सफल हो जाता है और उसका जीवन सुख, समृद्धि, सफलता, सम्पत्ति, सुमति, सम्पन्नता से भर जाता है । वह अन्ततः परम शान्ति तथा मोक्ष (परम पद) को भी प्राप्त करने में सफल होता है ।

- रामकिशोरसिंह 'विरागी' (काजीपुर क्वार्टर्स, पटना-बिहार)

तृप्ति

जो पुरूष परमात्मा को स्वीय जीवात्मा से अभिन्नरूप जानते है, वह इस जगत में और किसकी इच्छा रखते है ? एवं किस वस्तु की कामना करके शरीर का अनुवर्ती होकर जीर्ण होगें ? जो लोग जीवात्मा और परमात्मा की एकय ज्ञान समान भाव से समझते है, उन लोगो के लिए इस जगत में कोई प्रार्थनीय वस्तु दिखाई नही पडती है और ये सभी कोई भी कामना के वशीभूत होकर शरीर को जीर्ण नही करते है (यह आनन्दमय परमपुरुष विज्ञानमय जीवात्मा से निम्न, उसके भी भीतर रहनेवाला एक दुसरा आत्मा है । वह है आनन्दमय परमात्मा । उससे यह विज्ञानमय पुरूष व्याप्त है अर्थात् यह इसमें भी परिपूर्ण है ।

ये सभी इस प्रकार के अर्निवाचनीय परमानन्द को भोग करते है। उस परमानन्द को अतिरिक्त और कोई श्रेष्ठ पुरूष इस जगत में नहीं है।

अनिर्वाचनीय शक्तिस्वरूप माया चैतन्य के आभास द्वारा जीव और ईश्वर की कल्पना करता है । वही जीव और ईश्वर दोनो मिलकर समुदाय जगत की कल्पना करते है । वही जीव और ईश्वर दोनो मिलकर - समुदाय जगत की कल्पना करते है। वह माया ही प्रकृति है । वही प्रकृति सद्गुण के शुद्धि और अशुद्धि द्वारा दो भाग में विभक्त होती है । माया और अविद्या दोनो ही प्रकृति है । उक्त माया और अविद्या के प्रतिबिम्बित ब्रह्म चैतन्य को ही ईश्वर और जीव कहा गया है । अर्थात समस्त जगत ही जीव और ईश्वर कर्तृक कल्पना मात्र है । इस संसार में जागत अवस्था से लेकर मुक्ति तक समुदाय व्यापार जीव के द्वारा परिकल्पित है । वही जब जाग्रत काल में माया से विमोहित होकर, स्वरूप से विस्मृत होकर देह धारण पूर्वक सभी कार्य करता है । और वही जीव अन्नवस्त्रादि विविध द्रव्य भोग द्वारा तृप्तिलाभ करता है । तन्द्रावस्था में भी वह जीव सुख, दुख भोग करता है । परन्तु वही जीव सुषुप्तिकाल में जब हृदय में विलीन रहता है तब तक साधन रहता है । और जाग्रत होकर पुनः पुनः जाग्रत अवस्था को पाता है । इस प्रकार जीव तीनो अवस्थाओ को प्राप्त होता है ।

जो अविकारी असंग चैतन्य स्वरूप देह इन्द्रियादि भ्रम के आधारभूत परमात्मा, वह वास्तविक सम्बन्ध से रहित, उनको किसी विषय से कोई सम्बन्ध नही है । परन्तु परस्पर अभ्यास के वश स्वीय संसर्ग बुद्धि में अवस्थित होते है । इस प्रकार की अवस्था होने पर परमात्मा ही जीव शब्द में वाप्य होते है । लेकिन जीव को ही पुरुष कह निश्चय करना चाहिए।

स्वीय आधारभूत बुद्धि समन्वित जीवात्मा बन्धन और मोक्षादि से अविकृत रहते है । वह कभी संसार में आवध्य नही होते है, और उनको मुक्ति भी नही होती है । क्योंकि अधिष्ठान के अतिरिक्त कभी भ्रम सम्भव नहीं । इसलिए जीवात्मा सदा ही एक रूप में रहती है । जिस समय 'जीव चैतन्य' अपनी अधिष्ठान भूत कुटस्थ चैतन्य के साथ भ्रमांश अवलम्बन करता है, अर्थात मैं ही शरीर, इस प्रकार शरीर को अपना समझाता है, उस समय मैं संसारी हूँ । इस प्रकार के अभिमान उत्पत्ति होता है । शरीर में आत्मबोध होने से ही संसार में आत्मबोध होने से ही संसार में आत्मबोध होता है । यह दोनो ज्ञान ही भ्रमात्मक है । भ्रान्ति के वश में आकर शरीर और संसार का आत्मबोध होता है । जब जीव चैतन्य के पूर्वोक्त भ्रमज्ञान की दूर करने में समर्थ होता है । तब उसे चेतनता जागती है और अपने का कूटस्थ चैतन्य स्वरूप (ब्रह्म स्वरूप) समझाने को ज्ञान मिलती है । तब जीव चैतन्य कृतार्थ होता है । परन्तु मोह के आक्रमण वश जीव भ्रान्ति के वश में रहता है । इसलिए शरीर को आत्मज्ञान समझ कर के संसार में आत्मसम्बन्ध स्थापना करता है, और भ्रान्ति दुर होते ही अपने को असंग चैतन्य स्वरूप ज्ञान करता है, अर्थात् समझाता है । उसमें ही जीव का साफल्य सम्पादित होता है ।

अगर आप कहे, असंग चैतन्य स्वरूप परमात्मा में किसी प्रकार के अहंकार सम्भव नही, ऐसा होने पर 'मैं ही असंग चैतन्य' यह बोध कैसे होगा ? तब तो असंग चैतन्यज्ञान के कारण अहंकारी प्रमाणित होता है, अगर परमात्मा सभी प्रकार से अहंकार वर्जित है, तो 'मैं ही असंग चैतन्य' इस प्रकार के ज्ञान नही हो सकता है।

अव संशय को सिद्धान्त के लिए, इस स्थान पर अहं शब्द का तीन प्रकार के अर्थ निरुपित हो रहा है । उसमें एक मुख्य है और दो गौण है । परस्पर भ्रम के कारण कूटस्थ चैतन्य और आभासचैतन्य, यह दोनो भाव की, जो सकता है उसको अहं शब्द का मुख्यार्थ कहा गया है । क्योंकि साधारण अज्ञलोक सभी दोनों को एक भाव में रखते हुए अहं शब्द का प्रयोग करते है ।

जैसे देहात्मज्ञान अनायास ही सुसम्पन्द होता है, तदरूप जिसके आत्मा में देहात्म ज्ञान के वाधक और कूटस्थात्मज्ञान का उदय होता है, वह व्यक्ति मुक्ति की इच्छा न रखते हुए भी

मुक्त होता है । जिसक भाग्य में देहात्म ज्ञान तिरोहित होकर ''मैं ही वही कूटस्थ चैतन्यरूप'' परब्रह्म हूँ । इस प्रकार के ज्ञान का आर्विभाव होता है । वह व्यक्ति अनायास ही भवबन्धन से मुक्त होकर परमधाम गमन करता है ।

जीवगण के चित्त संसार में आसक्त होने से, कभी भी स्वप्रकाशमान कूटस्थ चैतन्य के स्वरूप को जान नहीं पाता है। इस अवस्था को अज्ञान कहते है । अब उस प्रकार के अभाव को आवरण कहा जाता है, और मैं ही कर्ता मैं ही भोक्ता इसे विक्षेप शक्ति कहा जाता है । कोई भ्रमरहित पुरुष के वाक्य को श्रवण करके ''एकमात्र कूटस्थ चैतन्य है '' इस प्रकार के जो दृढविश्वास होता है उसे परोक्ष ज्ञान कहते है । कूटस्थ चौतन्य के परोक्ष ज्ञान होने पर सविशेष विचार के द्वारा ''मैं ही वही कूटस्थ चैतन्य'' इस प्रकार का जो ज्ञान होता है, उसे अपरोक्ष ज्ञान कहते है ।

इस प्रकार के अपरोक्ष ज्ञान होने पर ''मैं कर्ता और मैं भोक्ता'' इत्यादि ज्ञान जब तिरोहित हो जाता है, जब शोक और मोहादि कुछ नही रहता है, यह सभी विलुप्त हो जाते है । इस प्रकार के अपनयन को शोकापनोदन कहते है । तत्पश्चात् में शोकापनयन होने से आत्मा में जो परितोष की उत्पत्ति होती है उसे तृप्ति कहा जाता है और उस तृप्ति को ही हर्ष दृष्टि कहा जाता है । परन्तु यह सभी जीव के अवस्थामात्र है, परन्तु कूटस्थ चैतन्य या परब्रह्म में कोई अवस्था ही नही है । अज्ञान, आवरण, विक्षेप यह तीनों अवस्था ही जीव को संसार बन्धन के प्रति आकर्षण करता है । तत्व निर्णय के पूर्व अवस्थाका जो उदासीन व्यवहार साराशं ''मैं कुछ नहीं जानता'' इस प्रकार निश्चय के जो कारण उसे अज्ञान कहते है । अज्ञानता के द्वारा तत्व निर्णय नही होता और तत्व निर्णय न होने से मुक्ति नही हो पाती, इसलिए जीव अज्ञान के द्वारा ही संसार में आवध्य रहता है ।

- टी. के. मुखर्जी (निमुजीबाजार, वर्धमान, पं. बंगाल)

तिलक का महात्मय

'ब्रह्मवैवर्त्त पुराण' में लिखा है :- ''तिलक नहीं लगाने से स्नान, दान, तप, यज्ञ, देव स्मरण, सन्ध्या आदि का फल नहीं मिलता '' हिन्दू धर्म में तिलक लगाना एक धार्मिक कार्य माना जाता है । तिलक चँदन केसर व कुमकुम आदि का लगाया जाता है तिलक ललाट पर दोनों आँखो के बीच आज्ञाचक्र पर जहाँ भगवान शंकर का तीसरा नेत्र है वहां लगाया जाता है । तिलक लगाने से धार्मिकता की भावना आती है तथा सिरदर्द, तनाव आदि से छूटकारा मिलता है सुबह दैनिक कार्य से निवृत्त होकर प्रतिदिन तिलक लगाना चाहिए इससे दिन भर सात्विकता बनी रहती है तिलक दो प्रकार का होता है । **(१) धार्मिक तिलक :-** यह भक्त लोग लगाते है यह केसर चन्दन आदि का होता है । **(२) श्रृंगारीक तिलक :** यह श्रृंगार करनेवाली सुहागन स्त्रीयाँ लगाती है । मन्दिर में जाते वक्त पुजारी तिलक लगाता है क्या आपने कभी सोचा तिलक क्यों लगाया जाता है ? हिन्दु संस्कृति में हर धार्मिक क्रिया - कर्म करने के पीछे कोई न कोई कारण होता है इससे हमारा तन-मन पवित्र होता है मन में शुद्ध विचार आते है कहीं अज्ञानी लोग हिन्दु - धर्म के तिलक को अन्ध विश्वास व दिखावा मानते है लेकीन ऐसा नहीं है इसके पीछे धार्मिक व वैज्ञानिक कारण है आजकल कहीं पाश्चात्य सभ्यता संस्कृति को अपनाने वाले लोग तिलक लगाने से मना करते है कहीं अंग्रेजी स्कूलों में तिलक लगाने से मना बोला जाता है । शिखा (चोटी) रखने पर दण्डित किया जाता है ऐसे स्कूल धर्म - परिवर्तन करवाने का कार्य करते हैं अतः हमें सावधान रहना चाहिए । तिलक को सुख - समृद्धि व सौभाग्य का प्रतिक माना जाता है। माता-पिता को भी अपने बच्चों का तिलक लगाकर विद्यालय भेजना चाहिए व उनमें प्रतिदिन तिलक लगाने की आदत डालनी चाहिए इससे एकाग्रता व याददाश्त बढती है तथा पढने में मन लगता है । सिरदर्द व मासीक तनाव से छुटकारा मिलता है । आजकल इस पाश्चात्य भोगवादी संस्कृति को अपनाने वाले लोग ''सादा जीवन उच्च विचार'' की भावना को भूलकर ''खाओ पिओ - मौज करो'' की पशु प्रवृत्ति अपना रहे हैं वे लोग धर्म व संस्कारों से परे हट रहे हैं । तिलक के साथ शिखा का भी बडा महत्व है पहले समय में तिलक लगाना व शिखा रखना हर हिन्दू का अनिवार्य धार्मिक कार्य होता था । चोटी रखने व तिलक लगाने से ज्ञान आने लगता है । तथा उसमें असाधारण प्रतिभा विकसीत होती है जहां शिखा रखी जाती है वहा कुण्डलीनी शक्ति का ''सहस्रार चक्र'' कहलाता है । अतः मेरी सभी पाठकों से प्रार्थना है की आप विद्यालय जाते समय, कार्यालय में जाते समय, बाहर यात्रा पर जाते समय भगवत् दर्शन करके तिलक जरूर लगाये इससे आप दिनभर कुकर्म व कुविचारों से बचे रहेंगे तथा आप में सात्विकता व धार्मिकता की भावना बढेगी । **- दिनेशकुमार एफ. माली (रोहिडा-सिरोही)**

कहाँ रह गई है... मानवता

जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामीने एक ही वाक्य में अपने महत्वपूर्ण संदेश को जनजन में पूरजोर से प्रसारित व प्रचारित किया था, **''हे मनुष्य । तू मानव बन, धर्मी बन, मुनि बन, मोक्ष जा ।''** वास्तव में यह संदेश तत्कालीन परिस्थितियों में भी प्रासंगिक था और आज के समय में भी प्रासंगिक है । क्योंकि मानव मानवीयता को भूलाकर अपने शोक - मोह, मौज - मस्ती व इन्द्रिय लौलुपता के चक्कर में पडकर ऐन केन प्रकारणे धन जुटाने के फेर में व्यस्त है । ईमानदारी का पैसा आज किसके पास है और है तो वो गरीब है । आज अमीर व करोडपति वही है जो भ्रष्टाचार, उलोच, चापलुसी, तस्करी, स्मगलिंग व अन्य अपराधिक कारनामों से धन दोनों हाथों से बटोर कर नम्बर दो का पैसा इकट्ठा कर रहा है जिसका कोई हिसाब नहीं और सरकार भी ध्यान क्यों दे ? उसे जो उपरी आय बतौर पैसा जो मिल जाता है । सरकार सरकारी पदाधिकारियों व कर्मचीयों के अपराधिक कारनामों पर नजर रखने़ बेबस है । इस प्रकार आज का अधिकांश जन मानस दावन होता जा रहा है । **कहाँ रह गई है मानवता ?**

मानव को मानव बने रहने हेतु अतिआवश्यक है, संयम, सेवा, स्नेह, सहयोग, सहिष्णुता व सौहार्द की । तभी अपने त्याग व परोपकार से वो जन-जन की सेवा कर महामानव भगवान राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, प्रभु ईसु, मोहम्म सा, गुरुनानक व महात्मा गांधी लोक व परलोकमें सदा सदा के लिए अमरत्व को प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करलेता है । ऐसे लोगों की आत्मा से ही मानवता प्रकट होती है । उनका आचरण मानवीयता से परीपूर्ण होता है । ऐसे लोगों के हृदय में दया व करूणा होती है । आँख में लज्जा होती है । हाथ जिसके नीति के धन से पवित्र होते हैं और पैर जिसके सदाचरण में सदैव गतिशील रहते है । तप-त्याग ही उनका आदर्श होता है ।

'दानव' बन अपराधिक प्रवृत्तियों को अपनानेवाला व्यक्ति अपने जीवन को अल्पायु में ही मौत के मूँह में धकेल देता है । वो कषायों अर्थात् काम, क्रोध, मद, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, छल - प्रपंच, राग, आसक्ति, तृष्णाओं आदि के फेरे में पडकर सदैव तनावग्रस्त रहकर भयंकर बीमारीयों का शीकार होता और अल्पायु में ही काल का ग्रस्त बन जाता है। अहंकार चाहे वो धन बल का हो, बाहू बल का हो, पद का हो या जमीन का हो उसकी बुद्धि को भ्रष्ट कर देता है । अहंकारी तो रावण, कंस, हरिण्यकश्यप आदि जो विद्वान व बडे बडे राज पाटों के होते हु भी सहज ही में काल के मूँह में समा गये । अहंकारी व लालची अपने विचारों के मद में भटक जाता है । विवेक खो देता है । मर्यादा, नैतिकता, शालीनता व विनम्रता को भूल जाता है और हठधर्मिता से सब का बूरा बन घृणा का पात्र बनता है । मन व मस्ष्कि काम नहीं करता । कहता कुछ है और करता कुछ है ।

हे मानव । मानव जन्म हजारों पुण्यों का प्रतिफल है। इसके महत्व को जानो अन्दर की आत्मा को पहचानो । परमात्मा क्या है इस कार्य का स्वागत करो । स्वयं जिओ और अन्यों को जीने दो । सादा जीवन उच्च विचार... एवं वसुधैव कुटुम्बकम् के आदर्शो पर चलो । आत्मीयता से ही परमात्मा की प्राप्ति संभव है अर्थात् मोक्ष प्राप्ति का मार्ग प्राप्त कर सकोगे । परमात्मा का सानिध्य तभी संभव है जब आत्मा में आध्यात्मिक प्रगति की आकांक्षा उत्पन्न हो । आत्मा जब तक विषय - विकारों से अपने को दूर हटाने एवं उसके स्थान पर मानवीय सद्गुणों को अपनाने की और अधिक से अधिक नही बनेगी तब तक आपकी जो आध्यात्मिकता में लगेगी ही नही सत् चित् व आनन्द की प्राप्ति इसी से संभव होगी ।

अस्तु । प्रभु ने हमें संदेश दिया कि हम ब्राह्य आत्मा से उपर उठकर अन्तर्मुखी हो जाएं । तभी आत्मा व परमात्मा के मध्य संपर्क संभव है । आप सच्चरित्र बनेंगे व नैतिकता पर चलेगें । सद्प्रवृत्तियों से सद्कर्म करेगें । कषायों का शमन करेंगे । इन्द्रिय व धन लोलुपता से भागेगें ।

महेश बी. शर्मा (गुमानपुरा, कोटा - राजस्थान)

पारदर्शी - कवित्त

चन्दा भर पेट लिया, फिर ये आदेश दिया,
आई. एस. आई । मार्क, टोपा ही जरूरी है ।
चार गुनी लेते रेट, जितने भी हेलमेट,
भनभनाए खोपडी, लूट मची पूरी है ।
देख बिना हेलमेट, पकडे पुलिस फेंट,
कुछ रूपये जुर्माना, भरें मजबूरी है ।
पारदर्शी घबराया, कैसा कानून बनाया,
इतनी सख्ती फिर भी, पालना अधूरी है ।

- सन्त ॐ पारदर्शी (उदयपुर)

रामचरित मानस की महत्ता

गोस्वामी तुलसीदास साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल (सम्वत् १३७५-सम्वत् १७००) के सर्वोपरि महाकवि के रूप में समादृत हैं । 'रामचरित मानस' गोस्वामी तुलसीदासकी सर्वाधिक लब्धप्रतिष्ठ रचना है । इस रचना को गोस्वामी तुलसीदास की 'सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि' भी मान लेना चाहिए ।

'रामचरित मानस' की रचना सात काण्डों में हुई है - (१) बालकांड, (२) अयोध्याकांड, (३) अरण्यकांड, (४) किष्किन्धाकांड, (५) सुन्दरकांड, (६) लंकाकांड तथा (७) उत्तरकांड ।

गोस्वामी तुलसीदासने 'मानस' की रचना राममय होकर की है। इसके नायक हैं - श्रीरामचन्द्र, जो शक्ति, शील एवं सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं । यह एक ऐसा ग्रन्थ है जिसने पूरे हिन्दू - समाज को 'राममय' कर दिया है ।

गोस्वामी तुलसीदासने 'मानस' के 'बालकांड' में लिखा है कि...

''करिति भनिति भूति भलि सोई ।
सुरसरि सम सबे कहँ हित होई ।।''

'मानस' को गोस्वामी तुलसीदास की सभी कृतियों में ही नहीं, वरन सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में जो 'अद्वितीय रचना' सिद्ध कर रहा है, वह इसका यही 'समाजमंगल' (मानवतावादी) का सन्देश है । यशस्वी आलोचक पं. रामचन्द्र शुक्ल ने इसी 'समाज मंगल' के आधार पर हमारे मानसकार को 'हिन्दी - साहित्य का सर्वश्रेष्ठ कवि' माना है ।

'मानस' का केन्द्रीय भाव है- आदर्श समाज की स्थापना तथा समाज मंगल की भावना का प्रचार - प्रसार । राम के चरित्र से उदात्त मानवीय गुणों को तथा रावण के चरित्र से घोर भौतिकतावाद (अपार बल, वैभव, धर्महीन शासन तथा आसुरी वृत्तियाँ) को उभारा गया है ।

मानसकार को मर्यादावादी कवि कहा जाता है तथा 'मानस' के नायक को मर्यादा पुरूषोत्तम । इनके जीवन से भारत के नागरिकों को मर्यादा में रहने की सीख लेनी चाहिए । यशस्वी आलोचक डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ('हिन्दी-साहित्य का इतिहास', पृष्ठ २०६, सम्पादक द्रय : डॉ. नगेन्द्र एवं डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त) का मत है कि : ''तुलसीदास का रामचरित मानस इस दिशा में (लोक मर्यादा की स्थापना की दिशा में) सर्वथा अप्रतिम है । इससे उत्तम ग्रन्थ न तो हिन्दी में पहले लिखा गया था और न इसके बाद लिखा गया ।'' आलोचक डॉ. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' की यह मान्यता निरापद है कि ''लोकधर्म का इतना बडा प्रतिपादक और मर्मज्ञ हिन्दी मैं दूसरां कवि नहीं हुआ ।''

गोस्वामी तुलसीदास ने 'मानस' में जो कुछ लिखा है, वह राग-द्वेष आदि की भावनाओं से मुक्त होकर तथा समाज को संगठित करने की दृष्टि से लिखा है, मानसकारने भारतीय समाज को संयुक्त करने की बात कही है, अलग करने की नहीं । इस प्रकार 'रामचरित मानस' को हमारी 'राष्ट्रीय रचना' कहने में हमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए । डॉ. उमाशंकर शुक्ल 'उमेश' का मत है कि ''जो ग्रन्थ महल से झोंपडी तक, अनपढ से विद्वान तक, रंक से राजा तक पहुँच चुका हो, जो भारतीयों के हृदय का हार बन चुका हो, उसको राष्ट्रीय ग्रन्थ क्यों नहीं कहा जा सकता है ?''

आज आपाधापी, भाग-दौड, स्वार्थपटुता, वैचारिक संकुचितता - संकीर्णता तथा सांस्कृतिक मूल्यों के ह्रास का युग है ऐसे घोर भौतिकतावादी एवं अर्थ-प्रधान युग में विश्व - मानवता को यदि कोई ग्रन्थ सद्मार्ग पर ले जा सकता है, तो वह 'रामचरितमानस' ही है, जिसे 'भारतीय संस्कृति का दर्पण' कहने में हमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए ।

गोस्वामी तुलसीदास की 'मानस' में (उत्तरकांड) मान्यता है कि- **''परहित सरिस धर्म नहीं भाई । परपीड़ा सम नहिं अधमाई । ''**

इसका अभिप्राय यह है कि जो व्यक्ति पर हित सम्पादन (समाज-मंगल) कर रहा है, वह सबसे बडा 'धार्मिक है । जो व्यक्ति दूसरे को (मनसा, वाचा एवं कर्मणा) पीडा पहुँचा रहा है, वह सबसे बडा 'पापी' है । वह 'दुष्ट' है । ऐसे व्यक्ति को मरने के बाद 'मोक्ष' नहीं मिलता । यह मानसकार का शिक्षा-दर्शन है । 'मानस' को समझने के लिए तथा समाज का मार्ग-दर्शन करने के लिए 'मानस' की यह - चौपाई 'टीका' का कार्य करती है ।

समाज मंगल के मार्ग पर ले जाने वाले लेखन को साहित्य कहते हैं । इस दृष्टि से यदि 'मानस' की परख करें तो हमें इस रचना को 'श्रेष्ठ साहित्य' कहने में कोई आपत्ति नहीं होगी । 'मानस' जीवन की समग्रता को लेकर चलनेवाली एक 'काल जयी' रचना है जिसकी जडें भारत की धरती में हैं । 'मानस' शत प्रतिशत साहित्य है । यह रचना अजर है, अमर है तथा अमिट है । यह साहित्य निश्चय ही 'प्रबोधात्मक साहित्य' की कोटि में आएगा।

आलोचक डॉ. कृष्णलाल का मत है कि - ''भारत वर्ष में समय - समय पर एक - से एक सुन्दर और प्रभावशाली ग्रन्थों का निर्माण हुआ, परन्तु महाभारत के पश्चात् यदि किसी एक ग्रन्थ ने समस्त जनता को प्रभावित किया तो वह ग्रन्थ-रत्न 'रामचरित मानस' ही है ।''

यदि हम प्रभाव की दृष्टि से गोस्वामी तुलसीदास तथा उनके 'मानस' के बारे में चिन्तन - मनन करें तो हमें यह बात कहने में

कोई आपत्ति नहीं होती कि भारतीय जन-मानस पर जितना प्रभाव मानसकार का पडा है, उतना प्रभाव किसी दूसरे कवि का नहीं इसका मूल कारण यह है कि हमारे इस महाकविने अपने समय को समझकर तथा भविष्य को ध्यान में रखते हुए 'मानस' की रचना की है ।

'मानस' की महत्ता इस बात से भी सूचित हो रही है कि यशस्वी आलोचक पं. रामविलास शर्माने 'मानस' की 'समाज स्वीकृति' के आधार पर 'भक्ति-काल' को हिन्दी - साहित्य का 'स्वर्ण युग' माना है ।

डॉकटर विजयेन्द्र स्नातकने अपने एक साक्षात्कार में 'हिन्दी के प्रतिनिधि साहित्यकारों से बताया है कि '' एक ग्रन्थ लिखा जाए, रामचरितमानस' और कुछ नहीं लिखा जाए, वही काफी है ।''

'मानस' के नायक श्री रामचंद्र का सम्पूर्ण जीवन ही कर्म प्रधान रहा है । राम को आधार मानकर मानसकारने समाज को आदर्श जीवन जीने का मार्ग बताया है ।

यह कहना निरापद है कि जब तक यह सृष्टि रहेगी, तब तक मानस की उपादेयता बनी रहेगी । आवश्यकता इस बात की है कि भारतवासी इस रचना के 'शिक्षा-दर्शन' को अपने दैनिक जीवन में व्यावहारिक रूप हैं । मुझे यह बात कहने में कोई आपत्ति नहीं होती कि - ''मानस के राम मानस है ।''

- डॉ. महेशचन्द्र शर्मा(साहिबाबाद, उत्तरप्रदेश)
- रीडर एवं अध्यक्ष : हिन्दी विभाग - लाजपतराय कोलेज
(चौधरी चरणसिंह विश्व विद्यालय, मेरठ)

शाकम्भरी देवी की महिमा

जगत जननी पराम्बा जगदीश्वरी भवानी माँ दुर्गा की महिमा अपरम्पार है । उनकी कृपादृष्टि एवं कृपाशक्ति से ही उनके स्वरूप का ज्ञान सम्भव है । माता श्री के अनेको शक्तिपीठ, सिद्ध पीठ, मन्दिर, दरबार आदि विभिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न नामो से प्रसिद्ध है । ऐसा ही एक सुन्दर व मनोहर मैय्यारानी का दरबार उत्तर प्रदेश के सहारनपुर नगर से लगभग ४० कि.मी. की दूरी पर प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण शिवालिक पर्वत की तलहटी में श्री माता शाकम्भरी देवी के नाम से एक प्रसिद्ध मन्दिर है । इस पवित्र धाम के मन्दिर में श्री माता शाकम्भरी देवी के स्वरूप के साथ दाई और शाताक्षी देवी और बाई ओर भीमा देवी और भ्रामरी देवी के श्री विग्रह स्थपित है भीमादेवी और शाकम्भरी देवी के श्री विग्रहों के मध्य में श्री गणेशजी के बालस्वरूप का श्री विग्रह भी स्थापित है ।श्री दुर्गा सप्तशति के अध्याय ग्यारह में माँ भगवती ने अपना शाकम्भरी, भीमा, भ्रामरी आदि अवतारों के सम्बन्ध में स्पष्टरूप से इस प्रकार के उल्लेख किया है कि देवताओं ! वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाईसवे युग में शुम्भ--निशुम्भ नाम के अन्य दो महादैत्य उत्पन्न होगें तब मैं नन्दगोप के घर में उनकी पत्नि यशोदा के गर्भ से अवतीर्ण हो विन्धाचल में जा कर रहुँगी और उक्त दोनों असुरों का नाश करूँगी फिर भयंकर रूप से पृथ्वी पर अवतार ले मैं विप्रचित नाम वाले दानवों का वध करूँगी । उन भयंकर दानवों का भक्षण करते समय मेंरे दाँन्त अनार के फूलो की भाँती लाल हो जायेगें । स्वर्ग में देवता और मर्त्यलोक में मनुष्य सदा मेरी स्तुति करते हुए मुझे रक्तदन्तिका कहेगें । फिर जब तक पृथ्वी पर सौ वर्षो के लिए वर्षो रूक जायेगी और पानी का आभाव हो जायेगा, उस समय मुनियों के स्तवन करने पर मैं पृथ्वी पर आयोनिजा रूप में प्रकट हो जाऊँगी और सौ नैत्रो से मुनियो को देखूँगी । अतः मनुष्य शाताक्षी नाम से मेरा कीर्तन करेगें । देवताओं उस समय मैं अपने शरीर से उत्पन्न हुए शाको द्वारा समस्त संसार का भरण-पोषण करूँगी । जब तक वर्षा नही होगी तब तक वे शाक ही सबके प्राणो की रक्षा करेंगे । ऐसा करने के कारण पृथ्वी पर शाकम्भरी के नाम से मेरी ख्याति होगी । उसी अवतार में मैं दुर्गम नामक महादैत्य का वध भी करूँगी । इससे मेरा नाम दुर्गा देवी के रूप में प्रसिद्ध होगा । इसी प्रकार भीमरूप धारण करके मुनियो की रक्षा के लिये हिमालय पर रहनेवाले राक्षसो का भक्षण करूँगी, उस समय सब मुनि भक्ति से नतमस्तक हो बार मेरी स्तुति करेगें । तब मेरा नाम भीमादेवी के रूप से विख्यात होगा । जब अरूण नाम का दैत्य तीनो लोकों में भारी उपद्रव मचायेगा तब मैं तीनो लोको का हित करने के लिए छः पैरोवाले असंख्य भ्रमरो का रूप धारण करके उस महादैत्य का वद्य करूँगी । उस समय सब लोग भ्रामरी के नाम से चारो ओर मेरी स्तुति करेगे ।

श्री दुर्गा सप्तशती के मूर्ति रहस्य में मा भगवती की अंगभूजा छः देविया बतायी गई है । जिनके नाम इस प्रकार है : नन्दा, रक्तदन्तिका, शाकम्भरी, भीमा, दुर्गा और भ्रामरी । ये सभी जगन्माता चण्डिका देवी की मूर्तियाँ बतलायी गई है । उपरोक्त दुर्गा सप्तशती के अध्याय ग्यारह एवं मूर्ति रहस्य में स्पष्ट रूप से यह वर्णन मिलता है कि देवी शाकम्भरी, शाताक्षी और दुर्गा एक ही है । अब प्रश्न यह उठता है कि द्वापर युग में अवतारित माँ भगवती की अंगभुजा उपरोक्त छः देवियाँ एक है या अलग अलग । अगर हम दुर्गा सप्तशती के ग्यारहवें

(शेष पृष्ठ १३ पर)

गीता, कर्मों का सांस्कृतिक प्रवाह

आज के समाज को भीड तंत्र कह सकते हैं । वासनाओं से अंधे हो लोग भ्रमित व आलसी बन गये हैं । पुरुषार्थ से दूर हो भाग्यवादी बनते जा रहे हैं । धर्म के नाम पर रूढिवादी परम्परायें व व्यक्तित्व की जगह चित्रों की महिमा कर रहे हैं । स्वर्णिम भारतीयता स्वप्नवत बना दिये हैं । वैचारिक क्रान्ति की बजाय पापाचार को बढावा देकर धर्म व राजनीति का अपराधीकरण किये जा रहे हैं । अब जरुरत है निरन्तर पुरूषार्थ करते हुए देश - समाज व परिवार के प्रति प्रीतिपूर्वक दायित्व निभाने की । झूठे वायदे व आश्वासनों से स्वर्णिम भारत का निर्माण नहीं हो सकता । संसार की लूट-मार वाली संस्कृति से हमें जागरूक होकर सत्कर्मों की ओर् बढते जाना होगा ।

कलियुग में सभी जगह स्वार्थ का समुद्र लहरा रहा है । मोह-विद्रोहने सभ्यता को नेस्त नाबूद कर दिया है । सौहार्द की सरितायें सुख गयी है । लगाव - तनाव - दुराव - टकराव बढते ही जा रहे हैं । झूठे शृंगार व आडम्बरों की आंधियां चल रही है । ढोंगी - पाखण्डियों की भरमार होती जा रही है । झूठ व फरेब के बिच्छू डंक मारने से नहीं चूकते साम्प्रदायिकता व क्षोलियता वाला तेरा - मेरा पन विष उगलता रहता है । विश्व बन्धुत्व की बजाय मिशाइलों से धमकियां दी जा रही हैं । धोखा अविश्वासने प्यारे सम्बन्धों में भी दरार पैदा कर दी है । सर्वत्र रिश्वतखोरी व धांधली का साम्राज्य छाया हुआ है । घटनाएं व समस्यायें सुख शान्ति की निगलती जा रही है । ऐसे घोर संक्रमण के समय गीता के भगवान ही पुनः पुरूषार्थ के लिए सभी को तैयार कर सकते हैं। अकर्मण्यता व आलस्य को गीता ज्ञान ही भगा सकता है । सच में गीता ज्ञान कर्म कुशल बनने को ही सुनाया गया है । ज्ञान और योग रूपी तटों के बीच बहनेवाली गीता, सत्कर्मों की ही सरिता है। जब श्रेष्ठ कर्मों का प्रवाह धरा पर सूख जाता तो ज्ञान - योग का कोई खास महत्व नहीं रह पाता । क्योंकि कर्म के पानी के सूखने से जीवन धारा खुष्क हो जाती है । सत्कर्म और दिव्य धारणायें ही गीता के सार हैं । इसलिए कर्तव्य परायण लोगों को ही तपस्वी - विजयी माना जाना चाहिए ।

कर्म के बिना योग अधूरा और ज्ञान अपूर्ण माना जा सकता है । सक्रियता के सिंहासन पर बैठे रहने के लिए ही गीता में निष्क्रयता को ठुकराया गया है । गीता का भाल, कर्मयोग के चन्दन से ही चमकता है । गीता के भगवान पर सर्वस्व समर्पण करके, जीवन का सपथ सुहाना हो जाता है । इसलिए गीता को कर्ममय संगीत ही समझिए । आत्मविश्वास की कमी के कारण ही अनंन्त संभावनाओं के द्वार हम बन्द किये बैठे हैं । श्रद्धाहीनता के कारण कर्मों में आनन्द ही नहीं आता काम के साथ ध्यान को भी बोझिल बना देने से जीवन का तीव्र प्रवाह रूक सा गया है ।

सुख-दुःख, दिन-रात, जय-पराजय, हानि-लाभ, मान-अपमान, गर्मी-सर्दी में भी हमें सजा ही समान भाव रखना चाहिए । पर आनन्द की खोज में लोग झूठे मनोरंजनों व नशाखोरी में डूब रहे हैं । श्रद्धा-विश्वास के साथ पूर्ण पुरूषार्थ के प्रवाह में डुबकी लगाकर ही आनन्दमय बना जा सकता है । कुछ लोग जीवन की पत्थर समझ यूँ ही तोडते रहते हैं । दूसरे रोटी, कपडा - मकान के लिए झूझते रहते हैं । पर उच्च श्रेणी के लोग पत्थर बने कलियुगी जीवन से परमात्मा की सूरत दर्शाने के लिए सतत प्रयत्नशील दिखते हैं । उनके पुरूषार्थ का सूर्य उदय होते ही पुरानी बातों का अंधेरा छंट जायेगा । फलतः आत्मविश्वास - सफलता और स्वर्णिम सुखों का प्रकाश चहुँ और फैलने लगेगा । उनकी आत्मा सुमधुर - सुखदायिनी बन विश्व नव निर्माण में लगी ही रहेगी ।

गीता से ही भारतीय संस्कृति बनी और विश्व में आध्यात्मिक सभ्यता पनपी है । यहाँ के लोगों में दिव्यता का वास होने से इनके जीवन को संगीतमय बनाया जा सकता है । आज के पर्यावरण में दुःख अशान्ति के चक्रव्युह में फँसकर जीवन ही संघर्ष बन गया है । आरोपों - प्रत्यारोपों से घिरे रहने कारण लोग अवसाद से घिरे ही रहते हैं । अतीत की स्मृतियों व भविष्य के लिए तनाव के बजाय अब वर्तमान में जीने की जरूरत है । शीतल जल की तरह हमारा जीवन सम्पूर्ण निर्विकारी होना चाहिए । जैसे सर्दी - गर्मी के कारण बर्फ या भाप बना पानी समय पर अपने शीतल स्वरूप में आ जाता वैसे ही व्यक्ति के पतित से पावन बनने का समय आ पहुँचा है । संग दोष के कारण मानव - दानव बना था पर उसका स्वाभाविक स्वभाव तो देवी - देवताओं जैसा है । भगवान के अवतरित हो सच्चा गीता ज्ञान सुनाते समय अपने शान्ति स्वधर्म में स्थित नहीं होगा तो विकृतियों से तेज - ओज को लुंटाता ही रहेगा । अब विकारों की आग में जलते रहने की बजाय करूणा - प्यार मैत्री और सेवा - सहानुभुति को अपनाईये वासनाओं के वशीभूत रह आत्मा के अनन्त ऐश्वर्य को अब नहीं गवाइए । स्वयं की दिव्यता को पहचान नर से श्रीनारायण, नारी से श्री लक्ष्मी समान बनिए । पवित्रता के असीम सुखों से जीवन को संगीतमय बनाइए । नष्टों मोहा, स्मृति स्वरूप बन राजयोग के पथ पर चलते रहिए ।

जड़ शरीर और चेतन आत्मा के मिलन को मानव कहा जाता है । शरीर जड़ तत्वों से बनी है इसलिए उसके स्वास्थ्य -

सौन्दर्य का निर्वाह अन्न, जल जैसे प्राकृतिक पदार्थों पर निर्भर रहता है । चेतन आत्माओं की तरह परमात्मा चेतना के परम स्रोत हैं । जन्म - जन्मान्तर कार्य - व्यवहार में आते आते आत्मायें शक्तिहीन हो मैं मूरख - खल - कामी कहने लगी हैं । परमात्मा की अमर संतान होने के कारण अब उनसे जितनी घनिष्टता बढती जायेगी हम उतने ही सामर्थ्यवान होते जायेंगे । व्यक्तित्व में निखार व परिष्कार आतेजाने से पावनता व प्रखरता भी बढती रहेगी । दोनों के रिश्ते में सच्चाई है तो कर्मों में सफलता मिलती ही रहेगी । परमात्मा समान सद्गुणों की मूरत बनते जाने से स्वभाव, संस्कार में दिव्यता भर जायेगी । सम्पूर्ण समर्पित हो उनकी आज्ञाओं को जीवन का अंग बनाने से सृष्टि चक्र में स्वतः ही राजपद के अधिकारी बनेंगे । उनकी शिक्षाओं के अनुसरण में सदा ही गर्व और गौरव का अनुभव होगा । ईश्वरीय दरवार में प्रामाणिकता के लिए विचारणा के साथ साथ दिनचर्या में भी उत्कृष्टता लानी चाहिए । जन्मों -जन्म के कटु संस्कारों को दिव्य बनाना ही गीता ज्ञान द्वारा दैवी संस्कृति से अलंकृत होना है । फलतः सांसारित जंजाल घटते ही जायेंगे । प्रतिकूलताओं में भी विचलीत हुए बिना, सेवा-साधना बढती रहेगी । अग्नि के बीच तपने वा एक पैर पर खडे हुए बिना ही जीवन पवित्रता - दृढता - दिव्यता से बोध स्वरूप बन जायेगा । तब ही गीता रूपी ज्ञान गंगा में सत्कर्मों की डुबकी लगाकर भारत को विश्व गुरु बना पायेंगे । तो आओ फिर जुट जायें ।

- ब्रह्माकुमार रामलखन, शान्तिवन, आबू

(शेष पृष्ठ ११ से निरंतर...)

अध्याय का ध्यानपूर्वक अध्यन करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि ये देवियाँ एक ही है । अलग-अलग कार्य के लिए अलग-अलग समय व स्थान पर अवतारित होने के कारण अलग अलग कहलायी है । मां भगवती ने शाकम्भरी, शाताक्षी एवं दुर्गा एक ही अवतार में तीन नाम धराये हैं । वस्तुतः ये एक ही है । जब ये तीनों एक है फिर ये प्रश्न उठता है कि इनके तीनों रूपो की पूजा एक ही स्थान पर क्यों ? या यूं कहिए कि इनके तीनो स्वरूपो को अलग अलग क्यों दर्शाया गया है जबकि एक ही देवी ने एक ही समय पर तीन नामों को धारण किया है। यहाँ पर कुछ लोगो का मानना है कि शाकम्भरी देवी का स्वरूप स्वयंभूँ प्रकट हुआ था तथा अन्य देवीयों के श्री विग्रह की स्थापना की गई थी । कुछ विद्वानो ने शाकम्भरी देवी मन्दिर की गणना सती देवी के अंग के कट कर गिरने से बने ५१ शक्तिपीठो में की है । उनका मानना है कि इस स्थान पर सती का सिर गिरा था । लेकिन धर्मशास्त्रों, पुराणों आदि में इस बात का कोई उल्लेख या प्रमाण नही मिलता यहाँ पर शाताक्षी देवी को शीतलादेवी के नाम से भी जाना जाता है । इसका कारण यह बतलाया जाता है कि शाताक्षी देवी को शीतल व सौम्य स्वभाव के कारण ही उन्हें शीतला देवी के नाम से भी जाना जाता है । स्थानीय लोग भी माता शाकम्भरी देवी को अपनी कुलदेवी के रूप में भी मानते हैं ।

उपरोक्त इतने विवादास्पद विचारों के उपरान्त भी श्री शाकम्भरी देवी माता का मन्दिर अटूट आस्था, श्रद्धा व विश्वास का केन्द्र बना हुआ है । दिन-प्रतिदिन श्रद्धालुओं की बढती हुई भीड इस बात का प्रमाण है कि यहाँ पर उनकी मनोकामनाएँ फलीभूत हो रही है । जय शाकम्भरी माता की।

– अनिल कोहली (शिवपुरी ऐक्स, गुडगांव)

ज्ञान गीता का

गीता का उपदेश है, करो कर्म दिन-रात ।
आज नही तो कल मिले, कर्मों की सौगात ।।
कर्मों की सौगात, मिले ना कर्म करे बिन ।
हो जग में पहचान, बढे यह तो दिन प्रतिदिन ।।
कहे 'राम' कविराय, कर्म है भाग्य - सरीता ।
करो कर्म दिन-रात, यही कहती है गीता ।।
गीता के अंदर सुनो, सब धर्मों का सार ।
पढे-लिखे जो नर इसे, हो वह भव से पार ।।
हो वह भव से पार, कर्म उपदेश सिखाता ।
मानवता की राह, कर्मवीर ही दिखाता ।
कहे 'राम' कविराय, ज्ञान-सोम रहे पीता ।
मानवता का मूल, सुनो जन केवल गीता ।।
मन में यदि रम गया, गीता जी का ज्ञान ।
पा जाता है वह मनुज जगती में पहचान ।।
जगती में पहचान, वचन मीठे ही बोले ।
वैर - भाव औद्वेष नहीं मन उसके डोले ।
कहे 'राम' कविराय, शुद्धता रहती तन में ।
गीताजी का ज्ञान, बसे गर अपने मन में ।।
रणक्षेत्र में कौन्तेय को, चढा मोह का रंग ।
कान्हा के मुख ज्ञान सुन, हुआ तभी यह भंग ।।
हुआ तभी यह भंग, धर्म की विजयी हुई तब ।
गया पाप हो नष्ट, अधर्मी मार दिये सब ।
कहे 'राम' कविराय, विजय मिली कुरुक्षेत्र में ।
सुन गीता का ज्ञान, लडे पार्थ रणक्षेत्र में ।।

- संत रामचरण 'आझाद'

(गांव - एटली, जि. महेन्द्रगढ-हरियाणा)

साक्षात्कार

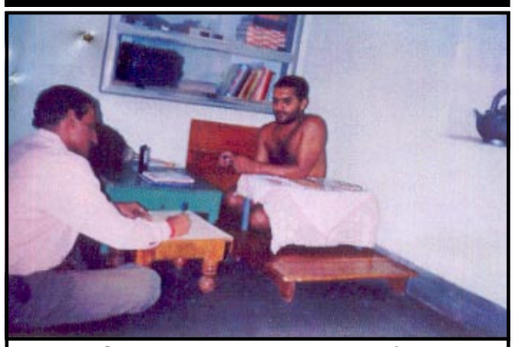

मुनिप्रवर श्री प्रणामसागर जी म. सा. से साक्षात्कार लेते हुए कवि जगदीप हर्षदर्शी (फोटो : प्रियदर्शी)

(जन-जन को जगाने के भीष्म प्रतिज्ञाधारी, क्रान्तिकारी संत १०८ श्री प्रणामसागरजी म. जो सम्पूर्ण भारत वर्ष में अपने प. पू. गुरूदेव आचार्यप्रवर १००८ श्री पुष्पदंतसागरजी म. सा. के शुभाशीर्वाद से अपने ओजस्वी - तेजस्वी मर्मस्पर्शी प्रवचनों से जैन-जैनेतर बन्धुओं में जागृति का शंखनाद कर रहे हैं, ऐसे विलक्षण संतप्रवर से हास्य - व्यंग्य कवि एवं पत्रकार जगदीप 'हर्षदर्शी' ने वर्तमान सामाजिक परिवेश से जुडे ज्वलंत प्रश्नों को लेकर श्री दिगम्बर आयड जैन मंदिर उदयपुर में साक्षात्कार लिया, उसे इस अपेक्षा के साथ अविकल प्रस्तुत किया जा रहा है कि पाठकवृंद इससे प्रेरणा लेते हुए सन्मार्ग की और उन्मुख होंगे - सम्पादक)

हर्षदर्शी - नमोस्तु महाराजश्री

मुनिश्री - (स्नेहिल दृष्टि डालते हुए मुनिश्रीने अपने कर-कमल आशीर्वाद मुद्रा में...)

(आपश्री से प्रथम उदयपुर चातुर्मास पदार्पण समसायिक चर्चा पश्चात्)

हर्षदर्शी - मुनिप्रवर चातुर्मास का मानव जीवन में क्या महत्व है?

मुनिश्री - आषाढ महिने से चातुर्मास का प्रारम्भ होता है । इस माह में अत्यधिक जीवों की उत्पत्ति होती है । संत अहिंसा का पुजारी होता है, वह अहिंसा का पालन एवं जीवों को अभयदान देने के लिए एक स्थान पर ठहर कर वर्षावास करता है । वर्षायोग साधु का ही नहीं, वरन श्रावक का भी होता है । चार माह श्रावक भी व्यावसायिक कार्यों से मुक्त होकर परमात्मा की आराधना-साधना में ध्यान लगाता है ।

हर्षदर्शी - साधना-आराधना के लिए चातुर्मास ही उत्तम क्यों है ?

मुनिश्री - वर्षायोग में ही महापुरुषों के पर्व एवं संतो के संयम पर्व मनाए जाते हैं । इन सभी के माध्यम से संत एवं श्रावक दोनों का जीवन साधनामय बन जाया करता है । चातुर्मास चार गतियों से मुक्त होने का आयाम हुआ करता है, चार दिन की चाँदनी फिर अंधेरी रात... । यदि चार महिने में श्रावक अपने जीवन में धर्म को अंगीकार कर लेता है तो उसके जीवन में कभी अंधकार नहीं रहता ।

हर्षदर्शी - वर्तमान में धर्म में धन का प्रवाह निरन्तर बढ रहा है, इसे कैसे रोका जाए ?

मुनिश्री - धन पुण्य के प्रभाव से प्राप्त होता है । आप चिन्तन कीजिए एक मजदूर कडी मेहनत कर सौ से पचास रूपये कमाता है, वही एक पुण्यात्मा पुरूष धर्म के साथ लाखों रूपये कमा लिया करता है । धन को टॉनिक नहीं, मल्हम के समान समझना चाहिए । मल्हम चमडी पर लगाई जाती है, टॉनिक को पीया जाता है । इसीलिए धन को जीवन का साधन नहीं जीवोकोपार्जन का साधन समझें । धर्म को आत्मा में अंगीकार कर परमात्मा की ओर अग्रसर होने के पश्चात् धर्म करते हुए धन कमाने का प्रयास होना चाहिए, तभी शांति और सुख की प्राप्ति हो सकती है। क्योंकि यह शाश्वत सत्य है मानव पैसों से सुखी नहीं परिवार की शांति से सुखी होता है ।

हर्षदर्शी - समाज, दर्शन को छोड प्रदर्शन की ओर उन्मुख हो रहा है, इसकी दिशा कैसे बदली जाए ?

मुनिश्री - एह मंदिरों में यदि महापुरुषों, तीर्थंकरों आदि के चित्रों को अंकित कर दिया जाए तो वह प्रदर्शन युवा पीढी के लिए दर्शन का काम करेगा । बिना प्रदर्शन के दर्शन नहीं हो सकता, जिस प्रकार सिनेमा में पहले प्रदर्शन होता है उसी को देखकर युवा पीढी उन्हीं चित्रों को अपने जीवन में अंकित कर लेती है। हमारे मंदिर - देवालय पुरानी पद्धति से रचे-पचे हैं। युवा का उल्टा वायु होता है यदि विशुद्ध वायु गृह मंदिरों में प्रवेश करने लगेगी तो हमारे मनमंदिर अपने

आप जीवित और जागृत हो जायेंगे और युवा प्रदर्शन के साथ-साथ आत्मदर्शन भी करना सीख जाएंगे ।

हर्षदर्शी - वर्तमान में नित-नई जैन पत्र-पत्रिकाएँ देखने को मिलती है, उनकी समाजोत्थान में क्या भूमिका होना चाहिए ?

मुनिश्री - जिस प्रकार नित-नए टी. वी. पर सीरियल चल रहे हैं, उसी प्रकार प्रवचनों एवं जैन पत्रिकाओं का बढना आवश्यक है । जन-जन को जागृत करने में इनकी अहम् भूमिका हुआ करती है । यदि बच्चे जैन पत्र-पत्रिकाओं को पढेंगे तो स्वतः ही फिल्मी मेगजीनों, अश्लील कहानियों, उपन्यासों आदि से दूर हो जाएंगे। जैन पत्र-पत्रिकाओं में जब उन्हें धर्म की जानकारियाँ, कहानियाँ आदि पढने को मिलेगी तो उनके जीवन में नई रोशनी का प्रकाश होगा । पत्रिकाएँ श्रावक जीवन का प्राण हुआ करती है, जिस प्रकार व्यापारी समाचार - पत्र के बिना नहीं जी सकता उसी प्रकार जैन श्रावक की पत्र-पत्रिकाओं के बिना कल्पना अधूरी है । जीवन के परिवर्तन का माध्यम पत्रिका ही है, जिसे हमें महावीर की पाती ही समझना चाहिए ।

हर्षदर्शी - सात्विक आहार जीवन की संजीवनी किस तरह है?

मुनिश्री - अच्छा प्रश्न किया 'हर्षदर्शी' आपने । शाकाहार हमारी भारतीय परंपरा है । भारतवासी संतो के उपासक है । संत प्रकृति के अनुसार जीया करता हैं। प्राकृतिक माध्यम से ही देश में खुशहाली का वातावरण रह सकता है । जो प्रकृति के साथ रहा करता है उसे प्राकृतिक आहार ही पसंद हुआ करता है । इंसान को हर प्राणी को जीवनदान देना चाहिए न कि मूक प्राणियों का हनन । क्योंकि इंसान के शरीर के तत्व सभी शाकाहारी पद्धति से बने हैं । शाकाहार इंसान के जीवन का सबसे श्रेष्ठ अमृतमय भोजन हुआ करता हैं । शाकाहार को ग्रहण करनेवाला बिना डॉकटर के पास जाए अपना जीवन जी लिया करता है ।

(एकाएक मुनिश्री की दृष्टि घडी की ओर उठी, नियमित धर्माराधना का समय देख, प्रसन्न मुद्रा से चर्चा को विराम देते हुए आशीर्वाद में अपने वरदहस्त उठा दिए)

- जगदीप 'हर्षदर्शी' (उदयपुर-राजस्थान)

मंद, तीव्र, अतितीव्र...

उस बाबा की सेवा करने वाले तिन जवान लडके थे एक रात बाबा ने खटखटाया तो कोई नहीं आया बाबा बोले : 'अरे कोई आया नहीं ' बुढापा आ गया प्रभु । इतने में एक युवक आया और बोला : बाबा मैं आपकी मदद करता हूँ'' बाबा का हाथ पकड कर शौचालय में ले गया फिर हाथ पैर फैला कर बिस्तर पर लेटा दिया '' यह कैसा सेवक है कि इतनी जल्दी आ गया इसके स्पर्श से अच्छा लग रहा है बडा आनंद आ रहा है । बाबा सोचने लगे जाते जाते वह बोला बाबा आप ऐसे खट खट करोगे तो मैं तुरन्त आजाऊंगा सेवा करूंगा

''बेटा तुम्हे कैसे पता चलेगा ?''

मुझे पता चल जाता है बाबा

''रात को सोता नहीं क्या ?''

'' कभी कभी सोता हुं मैं तो सदा सेवा में रहता हूं''

'' बाबा खट खटाते तो वह तुरंत आ जाता''

एक दिन बाबाने पूछा : 'बेटा तेरा घर कहां है ?'

'यही पास में, वैसे तो सब जगह ही हूं' बाबा सुनकर चकित हो गया । शंका होने लगी हो न हो पहले अपनेवाला ही है जो किसी का बेटा नहीं सबका बेटा बनने को तैयार है सबका बाप बनने गुरू बनने सखा बनने को तैयार है, बाबाने उस कर युवक का हाथ पकडकर पूछा : ''सच बता हम कौन है ?'' बाबा मुझे कई जगह जाना है चले जाना लेकिन तुम कौन हो यह तो बताओ ? '' अच्छा बताता हूं '' और देखते देखते पता नहीं कहां चला गया ।

हाथ छुडाया जात हो निर्बल जान के मोहे.... बाबा की अंतरदृष्टि खुल गई । 'भगवत् आप मेरे लिए इतना कष्ट सहते हो रात्री को हाथ पैर धुलावा दे प्रभु जब आप मेरा ईतना व्याल रख रहे हो तो मेरा रोग क्यो नहीं मिटा देते ? तब भगवान मन्द मन्द मुस्कराते बोले ''बाबा तीन प्रकार का प्रारब्ध होता है '' मंद, तीव्र, अतितीव्र....

मद प्रारब्ध सत्कर्म से दान पुण्य से, भक्ति से भर जाता है तीव्र प्रारब्ध अपने पुरूषार्थ और भगवान के संत महापुरूषों के आशीर्वाद से मिट जाता है परन्तु तीव्र प्रारब्ध तो मुझे भी भोगना पडता है रामावतार मैं मैने बाली को कुछ कर बाण मारा या तो कृष्णावतार में उफसने व्याध बनकर मेरे पैर में बाण मारा तरतीव्र प्रारब्ध सभी को भोगना पडता है आपका रोग मिटाकर प्रारब्ध दबा दूं फिर क्या पता उसे भोगने के लिए आपको दूसरा जन्म लेना पडे और तब कैसी स्थिति हो इससे तो अच्छा है अभी पुरा करलो '' ''प्रभु प्रभु प्रभु हे देव हे देव '' कहते कहते बाबा भगवान के चरणों में गिर पडे और भगवत शान्ति मे खो गये भगवान अंन्तर्धान हो गये । **डॉ. राज मानव** (निकट डाक घर, बल्लभगढ -हरियाणा)

यथार्थ दर्शन

श्रीमद् भगवद् गीता के तात्तिवक (यथार्थ आत्मानुभव) द्वारा परमात्मा के स्वरूप की सर्वमौलिकता के दर्शन कों आत्मसात करने के लिए दिव्य पुरुष का व्यक्तिगत सतसंग नितान्त ही आवश्यक है । गीता के ज्ञान का सत्संग, सरस, सरल तथा सुबोधपूर्ण 'कृष्णामय' अन्तरात्म पुरुषोत्तम द्वारा ही जीवन में उपलब्ध हो सकता है । ऐसे दिव्य पुरुष की संगत का अधिकारी भी अपनी, सत्यनिष्ठा एवं परम जिज्ञासा द्वारा अपने को बनाए वोही आत्म ज्ञान से परमात्मा पुरुष की सतसंग रूपी प्रेमाभक्ति से जीवन को जीने की उपलब्ध कर लेगा ।

प्रथम अध्याय गीता की प्रवेशिका है जिस में भागवद् पथ के पथिक को इस पथ में उपस्थित होने वाले विघ्नो उलझनो एवं भ्रमो का चित्रण किया गया है । धर्म की दिव्य दृष्टि को अपनाने में प्रथम चरण में अपनी भ्रमित मान्यताओं द्वारा स्वयं के प्रति पारिवारिक एवं सामाजिक मोह बाधक बनता है । सत्य एवं न्याय के अध्यात्म पथ पर आगे बढने पर साधक देखता है कि इन मधुर लगने वाले सम्बन्धों से संघर्ष करना होगा, तथा वह हिताश हो जाता है । ऐसे समय में भागवत पथ के यथार्थ मार्गदर्शन सद्गुरु दिव्य पुरूष की आवश्यकता पडती है ।

सद्गुरु दिव्य पुरुष के मार्ग दर्शन के बिना मानव कुरीतियों में फँसकर पृथक पृथक बाहरी मान्यताओं के सम्प्रदायों छोटे - बडे गुटो और असत्य रागद्वैष से पूर्ण जातियों की रचना कर लेता है । धर्म के नाम पर उसकी आड लेकर जाने क्यों लोग प्रमुख कुरितीओं के शिकार होते है तो जन समाज भी उन्ही का अनुकरण कर पथ भ्रष्ट हो जाता है ।

इस अध्याय में न्यायपूर्ण निष्काम कर्म की गरिमा को भागवत पथ के पथिक लिए स्पष्ट किया गया है । निष्काम कर्मी को कुशलता से सम्पन्न करने हेतु मोह की बाधाओं को दूर करने में बरती जानेवाली सावधानी के लिए सजग किया गया है । दिव्य जाग्रत सद्गुरु का मार्गदर्शन लेने से पूर्ण श्रद्धा तथा स्थित प्रज्ञ दिव्य पुरूष के लक्षणों को बताकर अपना यथार्थ परिचय देने की दिव्य दृष्टि विकसीत करने के लिए भी उसका अध्याय सचेत किया है । अपने में अपने शाश्वत सनातन स्वरूप आत्मा को पहेचान कर ही कोई दिव्य दृष्टि वाला होकर, अपने भीतर के भ्रमों का निर्वाण कर सकता है। आत्मज्ञान द्वारा परमात्म के साथ सनातन सम्बन्ध स्थापित करना 'ज्ञानयोग' है तथा परमात्मा की सत्ता सुयुक्त होकर प्रेममय एवं न्यायपूर्ण धर्मगुरु निष्काम कर्मों द्वारा धर्म की यथार्थ उपलब्धि, भागवत स्वरूप की प्राप्ति के परम पद को जीवन में ही प्राप्त करना है । यही मानव मात्र का परम लक्ष्य सनातन धर्म स्वरूप परम सत्य की स्थापना स्वयं के भीतर करना है ताकि उस की अभिव्यक्ति स्वयं से सर्व समाज के लिए कल्याणकारी हो । सर्व के हृदय, जिस के जगत का अनुभव हो रहा है, जिस द्वारा जगत - जीवन सिद्ध हो रहा है, इस निर्दोष विशुद्ध ज्ञान स्वस्थ आशावत अन्तरात्मा का ही सर्व का सनातन धर्म गीता का दर्शन है । इस अलौकिक स्वरूप की अवस्था से जीवन में जीनेवाला जीवन मुक्त दिव्य पुरुष होता है ।

आत्मा साक्षात्कार को अपने जीवन में अपनानेवाला ही परमात्म पुरुष होता है । यही सर्व का परम सत्य स्वरूप आत्मा ब्रह्म क्षणक स्वरूप से होता और समस्त प्राणीओं के भीतर की जीवन का एवं मृत्यु का निरन्तर नियमन करता है । इस अवस्थावाले महापुरुष को दैवी सम्पद्वाला दिव्य पुरुष घोषित करना गीता दर्शन का परम लक्ष्य है । ऐसे महापुरुष द्वारा परमदेव परमात्मा में प्रवेश दिलवानेवाली दैवी सम्पदा स्वयं के स्वरूप में विशुद्ध हृदय में पूर्णता निरन्तर प्रवाहित होती रहेगी । क्षत्रिय श्रेणी का साधक अन्तिम श्रेणी का साधक होता है । परम भक्त, आज्ञाकारी जिस में उसका सद्गुरु उसको तीनो गुणो को काट देने की एकता तक पहुंचा देता है । परम सत्य के स्वरूप की दर्शन की क्षमता से साधक सर्व असुर शक्तियों पर परम विजय प्राप्त कर - परमात्म पद पर स्वयं की आसीन पाता है ।

श्रीमद् भागवद् गीता परमात्म पुरुष परमात्मा का वह शाश्वत गीत है, जो प्रत्येक मानव को उसके भीतर की अमरता से जोड कर उसे सर्व बन्धनों से उपर शाश्वता का अमरत्व प्रदान करता है ।

किसी अन्तरात्मवान दिव्य पुरुष की सतसंगरूपी शरण लेनेवाला परम जिज्ञासु ही इस गान को गा सकता है वही इस के मर्म को स्वयं में समझ कर अपना सकता है । पूर्वाग्रहों एवं अपने मिथ्या भावनाओं से मुक्त होकर निष्कपट भाव से कोई सत्यान्वेषि ही दिव्य दृष्टि से अपने शाश्वत अमृत से युक्त जीवन द्वारा ईश दर्शन की स्थापना द्वारा सनातन धर्म की सस्थापना से परम सहयोगी होता है । वोही यथार्थ परायण है ।

आत्मस्वरूप अविनाशी है, इस से अलग सब कुछ नाशवान है आत्मसत्ता जगत् उत्पति के पांचो तत्वों, सूर्य - चन्द्रमा, तारागण अन्तरिक्ष आकाश सर्व इस सर्ववासुदेवमय स्वरूप के ही नियमन एवं नियति में ही सुचारू रूप से अपने अपने स्थान पर सृष्टि रचना के दैविक निष्काम कर्म में सहयोगी देव है । अखिल ब्रह्मांड परमात्म सत्ता का विराट शिव स्वरूप है जिस में जगत् का सन्तुलन बनाए रखने के लिए दैविक शक्तियों को असुर शक्तियों के संहार के लिए निरन्तर धर्मयुक्त संग्राम रूपी युद्ध करना ही पडता है । शाश्वत सनातन परमधर्म परमात्मा की अवस्था को दिलानेवाला, जीवन एवंस समाज से अन्याय को हटानेवाला ही यथार्थ से दिव्य पुरुष के पद पर अपने को अनुभव करेगा । वोही सच्चा शिष्य एवं निवृत्त होने पर सच्चा सद्गुरु हो सकता है । जो स्वयं अनुभव से नहीं गुजरता भला वह अपने मार्गदर्शकों को क्या ? यथार्थ मार्गदर्शन करेगा । व्यक्तित्व जैसा कर्मो का बीज बोता है, वैसी शक्तियों का सर्जन होता है असुर (भ्रमित) शक्तियों की अधिकता होने पर मानव की भीतर की दैवि शक्तियों का संघर्ष निरन्तर चलता है यही मानव के जीवन धारण करने, भोगने एवं मृत्यु का कारण है जो सर्व बन्धनो एवं दुःखो का कारण है । जगत रूपी जीवन को धारण करनेवाला जीव जब अपनी सनातन सत्ता का अनुभव, किसी एक के अनुभवी महापुरुष से कर लेता है तो यही मानव की यथार्थ विजय है मृत्यु से उपर प्रकृति के सर्व बन्धनों से सर्वदा मुक्त स्वयं में परमात्म साक्षात्कार करने रूपी परम विजय के वाद कभी कोई हार नहीं होती है ।

-परम संत कृष्णाआनन्द आबूपर्वत

संकलन कर्ता - उषा आनन्द

विवेकानन्द ब्रह्म योग विद्या केन्द्र, आबूपर्वत

હવે આત્મજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ માટે કેવો પુરુષાર્થ ઉપયોગી થાય છે તે સાંભળો. એ પુરુષાર્થથી રાગદ્વેષરૂપી વિષૂચિકા નો રોગ અત્યંત શાંત થઈ જાય છે. લોકથી અને શાસ્ત્રથી વિરુધ્ધ હોય નહિ એવી શક્ય આજીવિકાથી મનમાં સંતોષ રાખવો અને ભોગના અભિનિવેશનો ત્યાગ કરવો. શક્તિ પ્રમાણે અને યોગ્ય રીતે આજીવિકા માટે ઉદ્યોગ કરવો. ''કેમ થશે'' એવી કાંઈ પણ ચિંતા ન રાખવી અને પ્રથમ મહાત્માઓના તથા ઉત્તમ શાસ્ત્રના સંગમાં તત્પર રહેવું. જે પુરુષ યોગ્ય વૃત્તિથી મળતાં ધનમાં સંતોષ રાખે છે, હલકી વૃત્તિની ઉપેક્ષા કરે છે અને સત્પુરુષ ના સમાગમમાં તથા ઉત્તમ શાસ્ત્રમાં તત્પર રહે છે, તે પુરુષ તરત મુક્તિ પામે છે. જેણે વિચારથી આત્મતત્વને જાણ્યું હોય છે, તે મહાબુદ્ધિવાળા પુરુષને આ બ્રહ્મા, વિષ્ણુ, ઈન્દ્ર અને શંકર પણ કંગાળ લાગે છે. દેશમાં પણ ખરા સુજ્જન લોકો જેને 'સાધુ' કહેતા હોય તથા જેમાં વૈરાગ્ય આદિ ગુણોની સંપત્તિ હોય તેને 'સાધુ' સમજવો અને પ્રયત્ન કરીને એવા સાધુનો આશ્રય કરવો. બ્રહ્મવિદ્યા સઘળી વિદ્યાઓમાં મુખ્ય છે. જેમાં તેનું વર્ણન આવતું હોય તે ઉત્તમ શાસ્ત્ર કહેવાય છે. એવા શાસ્ત્રનો વિચાર કરવાથી મુક્તિ મળે છે. જેમ નિર્મળીની રજના સંબંધથી જળની મલિનતા મટે છે અને જેમ યોગના અભ્યાસથી યોગીઓની બુદ્ધિ બહાર ભટકતી અટકે છે, તેમ ઉત્તમ શાસ્ત્રના તથા સાધુઓના સંગથી વિવેક પ્રાપ્ત થાય છે અને એ વિવેકના બળથી અવિદ્યા નાશ પામે છે.

તમે કહી ગયા કે, 'એ દેવના જ્ઞાનથી મુક્તિ થાય છે.' તો એ દેવ ક્યાં રહે છે અને મને તેમની પ્રાપ્તિ શી રીતે થાય ? આ તમે મને કહો.

મેં જે દેવ વિષે કહ્યું છે, તે દેવ દૂર રહેતા નથી પણ સર્વદા શરીરમાં જ રહે છે. તે ચૈતન્યમાત્ર છે એમ શાસ્ત્રોમાં પ્રસિદ્ધ છે. સઘળું જગત એ દેવમય છે. પણ એ દેવ સઘળા જગતમય નથી. એ દેવ સર્વમાં વ્યાપક છે અને એક જ છે એમાં જગતનો લેશ પણ નથી. સદાશિવ ચૈતન્યમાત્ર છે, વિષ્ણુ ચૈતન્યમાત્ર છે, સૂર્ય ચૈતન્યમાત્ર છે, અને બ્રહ્મા પણ ચૈતન્યમાત્ર જ છે.

બાળકો પણ કહે છે કે આ જગત ચૈતન્યમાત્ર (જીવરૂપ) છે અને તમે પણ એમ જ કહો છો, ત્યારે આ વાતમાં અપૂર્વ ઉપદેશપણું શું આવ્યું છે ?

તમે જીવને ચૈતન્ય સમજીને જગતને તે રૂપ સમજ્યા છો. આથી હજી તમે સંસારનો નાશ થાય એવી સાચી વાત કંઈ જ સમજ્યા નથી. આ સંસારરૂપ જીવ પશુ કહેવાય છે તો તે ચૈતન્યમાત્ર દેવ હોય ખરો ? એ જીવ તો દેહનું ગ્રહણ કરીને જરા તથા મરણ આદિ અનેક ભયને ભોગવે છે. એ જીવ નિરાકાર છે, તો પણ અજ્ઞાની છે અને દુઃખના જ પાત્રરૂપ છે, તેથી તેને ચૈતન્ય માત્ર દેવ કેમ કહેવાય ? જીવ પોતે ચેતનશક્તિવાળો હોવાથી અનર્થરૂપ મનને જાગ્રત કરે છે અને પોતે મનરૂપ થઈને રહે છે, આથી તે દુઃખના પાત્રરૂપ જ છે. વિષયોથી રહિતપણું અથવા તો વિષયોથી દૂર રહેવાપણું એ એની સંપૂર્ણ સ્થિતિ છે. તેને જાણવાથી મનુષ્યને શોક કરવો પડતો નથી, પરંતુ તે કૃતાર્થપણું પ્રાપ્ત કરે છે. જ્યારે સઘળાં કારણો કારણરૂપ એવા પરમ સ્વરૂપનો અનુભવ થાય છે, ત્યારે જડના તથા ચૈતન્યના અધ્યાસરૂપ ગાંઠ છૂટી જાય છે, સઘળા સંશયો ભેદાઈ જાય છે અને સઘળાં કર્મોનો ક્ષય થાય છે. જીવ જે વિષયો તરફ ખેંચાય છે, તે વિષયોનો અભાવ કર્યા વિના રોકી શકાય એમ નથી, અને પ્રત્યક્ષ દેખાતા વિષયોનો અભાવ જ્ઞાન વિના થાય એમ નથી, તો પછી જ્ઞાન થયા વિના મોક્ષ પણ ક્યાંથી થાય ? સમાધિ પણ દૃશ્ય એવા વિષયોનો બાધ કરવાથી થાય છે, ત્યારે મોક્ષમાં દૃશ્ય વિષયોનો બાધ કરવાની આવશ્યકતા હોય તેમાં તો કહેવું જ શું ?

નિરાકાર છતાં પણ પશુ જેવા અજ્ઞાની જે જીવને જાણવાથી સંસાર (જન્મમરણરૂપ પ્રવાહ) ટળતો નથી, તે જીવ ક્યાં રહે છે અને કેવો છે ? વળી હે બ્રહ્મન સંસારરૂપી સમુદ્રમાંથી તારનાર પરમાત્મા મહાત્માઓના તથા ઉત્તમ શાસ્ત્રોના સંગથી જે જાણવામાં આવે છે, તે ક્યાં છે અને કેવા છે ? આ તમે મને કહો.

ચેતનરૂપવાળા અને જન્મ મરણ આદિ જંગલમાં ભટકતા આ જીવને જેઓ આત્મા માને છે તેઓ પંડિત છતાં મૂર્ખ છે. જીવ ચેતન છતાં પણ સંસારરૂપ છે અને દુઃખના સમૂહરૂપ જ છે, માટે એ જાણવાથી કોઈ પણ ઠેકાણે કોઈ પણ તત્ત્વ જાણવામાં આવ્યું હોય એમ સમજવું જ નહિ. પણ જો પરમાત્મા જાણવામાં આવે, તો જેમ ઝેરનો આવેશ શાંત થતાં વિષૂચિકા શાંત થઈ જાય છે, તેમ સઘળાં દુઃખોનો સમૂહ પણ શાંત થઈ જાય છે.

મને પરમાત્માનું ખરું સ્વરુપ કહો કે જે જાણવાથી મારું મન સર્વ મોહને તરી જાય.

આપણું જ્ઞાન એક પ્રદેશમાંથી પલકવારમાં બીજા પ્રદેશમાં પહોંચે છે. તે વખતે તે બંને પ્રદેશના સંબંધથી રહિત એવું જે તેનું નિર્વિષય સ્વરુપ પ્રતિત થાય છે, તે પરમાત્માનું સ્વરુપ છે. જે જ્ઞાનરુપી મહાસાગરમાં સંસાર નાશ આદિ કોઈ વિકારોને પ્રાપ્ત થયા વિના પણ અત્યંત અભાવ પામે છે, તે પરમાત્માનું રૂપ છે. દૃષ્ટા અને દૃશ્યનો ક્રમ જેમ ને તેમ રહ્યા છતાં જેને વિશે અસ્ત પામી જાય છે અને જે ભરપૂર છતાં પણ સઘળી

કલ્પનાઓને અવકાશ આપે છે, તે પરમાત્માનું સ્વરૂપ છે. જે અશૂન્ય છતાં પણ શૂન્ય જેવું પ્રતીત થાય છે, જેમાં વાંઝણીના પુત્ર જેવું આ જગત રહ્યું છે અને જે પોતાનામાં અનંત બ્રહ્માંડો રહેતાં હોવા છતાં પણ તેમનાથી રહિત છે, તે પરમાત્માનું સ્વરૂપ છે. જે મહાજ્ઞાનમય છતાં પણ આપણા વૃત્તિજ્ઞાનની પેઠે ચલિત નહિ થતાં મોટા પથરાની પેઠે અવિચળ રહ્યું છે અને જેમાં જડ તથા ચેતનરૂપ સઘળા જગતનો સમાવેશ થાય છે, તે પરમાત્માનું સ્વરૂપ છે. બહારના તથા અંદરના વિષયો સહિત આ સઘળું જગત જેની સત્તાથી સત્તા પામ્યું છે તે પરમાત્માનું સ્વરૂપ છે. જેમ પ્રકાશથી દેખાવ જુદો પડતો નથી અને આકાશથી શૂન્યપણું જુદું પડતું નથી, તેમ જ આ જગત કલ્પિત હોવાને લીધે જેના સ્વરૂપથી જુદું પડતું નથી તે પરમાત્માનું સ્વરૂપ છે.

જે પરમાત્મા જોવામાં આવતા નથી તે જ એક સત્ય છે એમ કેમ જાણી શકાય ને આવડું બધું પ્રત્યક્ષ જણાતું આ જગત સઘળું મિથ્યા છે, એ શી રીતે મનમાં ઊતરે ?

આ જગતરૂપી ભ્રમ - જેમ આકાશમાં લીલા કાળા રંગ ભ્રમને લીધે જોવામાં આવે છે. તેમ - ઉત્પન્ન થયો છે. જો તેના અત્યંત અભાવનું જ્ઞાન દૃઢ રીતે થાય તો તેનું અધિષ્ઠાન બ્રહ્મ સ્પષ્ટ જાણવામાં આવે છે, બીજી કોઈ ક્રિયાથી તે જાણવામાં આવતું નથી. દૃશ્યના અત્યંત અભાવને દૃઢ કર્યા વિના બ્રહ્મને જાણવાનો બીજો કોઈ પણ સારો ઉપાય નથી. જેવી સ્થિતિમાં છે તેવી જ સ્થિતિમાં રહેલા આ જગતનો અત્યંત અભાવ સમજાય છે, તો તેના અધિષ્ઠાનરૂપ પરમાત્મા બાકી રહે છે. જે આ જ્ઞાનથી સમજે છે, તે પોતે પરમાત્મારૂપ થાય છે. જ્યાં સુધી બીજો કોઈ પણ પદાર્થ હોય ત્યાં સુધી દર્પણમાં તે પદાર્થનું, પ્રતિબિંબ પડ્યા વિના રહેતું જ નથી, તે જ પ્રમાણે જ્યાં સુધી જગત પોતાની સત્તાવાળું દેખાય છે, ત્યાં સુધી બુદ્ધિમાં જગતનું પ્રતિબિંબ પડ્યા વિના રહેતું જ નથી. આથી જગતનો અત્યંત અભાવ કરવાથી બુદ્ધિમાં તેનું પ્રતિબિંબ પડ્યા વિના રહેતું જ નથી. અને તેમ થયા પછી જ બુદ્ધિમાં બ્રહ્મનું પ્રતિબિંબ પડે છે. આથી જગતનો અત્યંત અભાવ કરવાથી બુદ્ધિમાં તેનું પ્રતિબિંબ પડે જ નહિ. આ 'જગત' નામનો દૃશ્ય પદાર્થ મિથ્યા જ છે, એમ નિશ્ચય કર્યા વિના કોઈ માણસ કદી પણ પરમ તત્વ સમજી શકે નહિ.

આટલું બધું બ્રહ્માંડરૂપ જે દૃશ્ય છે, તેમાં તેની પોતાની સત્તા નથી પણ બ્રહ્મની જ સત્તા છે એમ આપે કહ્યું, પણ તે શી રીતે મનમાં ઊતરે ? જેમ સરસવના પેટમાં મેરુ પર્વતનો સમાવેશ અસંભવિત છે, તેમ અત્યંત સૂક્ષ્મ એવા બ્રહ્મમાં આવડા મોટા બ્રહ્માંડનો સમાવેશ થાય એ અસંભવિત છે.

તમે જો મનમાં અકળાયા વિના મહાત્માઓના અને ઉત્તમ શાસ્ત્રના સંગમાં તત્પર રહીને થોડાક દિવસ સાંભળ્યા કરશો તો હું ક્ષણમાત્રમાં દૃશ્યને ઉડાડી દઈશ. જેમ ખરું જ્ઞાન થતાં ઝાંઝવાનું પાણી દેખાતું બંધ પડે છે, તેમ બોધ થયા પછી તમને દૃશ્ય પણ અબાધિત રહેશે નહિ દૃશ્યનો અભાવ થાય છે એટલે દ્રષ્ટાપણું પણ શાંત થઈ જાય છે અને કેવળ બોધ એટલે જ્ઞાન અવશેષ રહે છે. જો દૃશ્ય છે તો જ દૃષ્ટા છે, અને જો દૃષ્ટા છે તો જ દૃશ્ય છે તેમ જ એક હોય તો જ બે છે, અને બે હોય તો જ એક છે. આમાંથી એકનો અભાવ થાય, તો બંને અસિદ્ધ થઈ જાય છે. આ પ્રમાણે જ્યારે બેપણું, એકપણું, દૃશ્યપણું અને દ્રષ્ટાપણું એ ચારનો અભાવ થશે, ત્યારે પરમાર્થ વસ્તુ જ અવશેષ રહેશે. તમારા મનરૂપી દર્પણમાં અહંપણા આદિ દૃશ્ય જગતરૂપ જે મેલ છે . તેનો અત્યંત અભાવ સમજાવીને હું તે મેલને માંજી નાખીશ. જે પદાર્થ પોતાની સત્તા વિનાનો હોય છે તેનો ભાવ હોતો નથી, અને જે પદાર્થ પોતાની સત્તાવાળો હોય છે તેનો અભાવ હોતો નથી. આથી જગત પોતાની સત્તા વિનાનું હોવાથી ભાવ વિનાનું જ છે. તેને ટાળી નાખવામાં તે શી મહેનત પડવાની હતી ? જગત મૂળે ઉત્પન્ન જ થયું નથી છતાં તે આ જે વિશાળતાવાળું દેખાય છે તે નિર્મળ પરમાત્મામાં જ દેખાય છે અને પરમાત્માની સત્તાથી જ તે સત્તાવાળું છે. જેમ કડાં આદિ આભૂષણ સુવર્ણથી જુદાં ઉત્પન્ન થયાં નથી, સૂવર્ણથી જુદાં નથી અને સુવર્ણથી જુદાં જોવામાં આવતાં નથી, તેમ આ જગત બ્રહ્મથી જુદું ઉત્પન્ન થયું નથી, બ્રહ્મથી જુદું નથી અને બ્રહ્મથી જુદું જોવામાં પણ આવતું નથી, એ જગતને ટાળવામાં શી મહેનત પડવાની હતી ? (જેમ કડામાં સુવર્ણની બુદ્ધિ કરવાથી કડાપણું રહેતું નથી તેમ જગતમાં બ્રહ્મબુદ્ધિ કરવાથી જગતપણું રહેતું નથી.) આ વિષય હું તમને ઘણી ઘણી યુક્તિઓથી વિસ્તાર પૂર્વક કહીશ એટલે અબાધિત એવું શુદ્ધ તત્વ પોતાની મેળે જ તમારા અનુભવમાં આવશે. જેમ મરુ દેશમાં નદી જ નથી તો પછી તેનું જળ ક્યાંથી હોય ? જેમ બીજો ચંદ્ર જ નથી તો તેનું ગ્રહણ થવું ક્યાંથી હોય ? તેમ જ જગત મૂળમાં ઉત્પન્ન થયું નથી તો પછી તેનું અસ્તિત્વ પણ ક્યાંથી હોય ? જેમ વાંઝણીનો પુત્ર હોતો નથી, મરુદેશમાં જળ હોતું નથી અને આકાશમાં વૃક્ષ હોતું નથી તેમ આ ભ્રાંતિરૂપ જગત મૂળમાં છે જ નહિ. જે આ જોવામાં આવે છે તે અખંડિત બ્રહ્મ જ છે. એ વિષય હું આગળ જતાં તમને કેવળ વચનથી જ નહિ પણ યુક્તિથી કહીશ. હે ઉદાર બુદ્ધિવાળા વિદ્વાન લોકો આ વિષયમાં યુક્તિઓથી જે કહે છે તેનો અનાદર કરવો યોગ્ય નથી. જે મૂઢ બુદ્ધિવાળો માણસ યુક્તિઓથી ભરેલા વિષયનો અનાદર કરીને મહાદુઃખદાયી આગ્રહ લઈ બેસે છે તેને વિદ્વાન લોકો મૂર્ખ જ સમજે છે. **(ક્રમશઃ)**

वापसी

श्याम अब पूरी तरह से सुधर गया था । अपनी छोटी सी चाल की घुमटी में ही वह सारा खर्च निकालकर घर परिवार की संभाल कर रहा था । सारे उल्टे धंधे वह छोड चूका था । मगर वक्त ने ऐसा रूख मोडा कि उसे कहीं का न छोडा । अतिक्रमण में उसकी दुकान हट गई बनी बनाई ग्राहकी एक झटके में छूट गई । मजबूरी का मारा बेचारा इधर-उधर भटकता रहा किन्तु गुजर करना मुश्किल हो चला । जैसे-तैसे घर की हालत में तबदीली आई थी वह भी ज्यादा दिन तक कायम न रह सकी । अपने काम के साथ ही श्याम ने भगवान के नाम में भी रुचि लेना शुरु कर दिया था । बदले हुए हालात से वह विचलित हो उठा मानों कोई भूचाल सा आ गया हो । सीधी सादी जिन्दगी उसे रास नहीं आई आखिर उसने फिर वही मार्ग अपना लिया जिस पर न चलने की कसम खाई थी । अपराध की दुनिया में पुनः उसकी वापसी बडी भयानक सिद्ध हुई । चोरी, डकैती, लूटमार जैसी वारदातें उसके लिए एक खेल बन चुकी थी । खूंखार अपराधी का रूप धारण करते श्याम को देर न लगी क्योंकि पहले से ही वह बहुत कुछ सीख चुका था । इस घटना से प्रभावित होकर उसने समय की चुनौती को स्वीकार कर लिया । अब तो वह सरेआम हर बुरे काम करने का आदि हो गया । उसकी वापसी किसी त्रासदी से कम नही लोग आपस में यही बातें करते कि दुबारा उसकी वापसी की संभवनाएँ कम है मगर फिर भी वह वापस आ जाता है तो यह दुनिया का सबसे सुखद आश्चर्य होगा।

बंजारा हूँ में

सूरज चांद नही मगर, भोर का तारा हूँ में
चैन से जीने दो मुझे, जीत कर हारा हूँ में
चन्द लम्हों की शांति, मांगी थी दुनिया से मैने
कुछ न मिला इस जग में, तकदीर का मारा हूँ में
अब उठाने की जरूरत नही पडेगी तुमको यारों
हाथ से फिसला हुआ, धूल में अब पारा हूँ में
चार तिनके उम्रभर, आंशिया को न जुटा सका
मंझिलों से बेखबर, अन्जान सा बंजारा हूँ में
लाखो लोग भटके हुए थे, उन्हें घर का पता दिया
फिर भी दुनिया कहती है, मूरख और आवारा हूँ में
पूछता रहा हर वक्त, खैर खबर हर शख्स की
पर लोगों की नजर में, आज भी एक नाकारा हूँ में
बदनसीबी पर भला, किसने न उडायी हंसी मेरी
जिसने दी पहचान मुझे, उसी ने कहा तुम्हा हूँ में
'यादव' चला था ढूंढने अपने यार को गांव-शहर
बतलाने की बात अलग है, लेकिन सबसे न्यारा हूँ में ।

–रामचरण यादव 'याददाश्त'
प्रधान सम्पादक - नाजनीन, सदरबाजार, बैतूल (म.प्र.)

ग्यारहवीं श्रीमद् भगवद्गीता प्रतियोगिता

परमश्रद्धेय श्री स्वामी संवित् सोमगिरिजी के संरक्षण में ग्यारहवीं गीता प्रतियोगिता का आयोजन किया जा रहा है । आपसे अनुरोध है कि अपने महाविद्यालय के सभी विद्यार्थियों को इस प्रतियोगिता में भाग लेने हेतु प्रेरित कर सहयोग प्रदान करें ।

गीता-प्रतियोगिता आयोजन समिति, मानव प्रबोधन प्रन्यास

श्री लालेश्वर महादेव मन्दिर, शिवमठ, शिवबाडी,

बीकानेर दूरभाष : ०१५१ - २२३०९८२

RAJ BILO-1295/20/1/2005-TC

डाक पंजीयन सं. RJ / WR / 25 / 19 / 2003-05,
Licence No. 5 Licensed to Post without Pre-Payment.

कैसे पद रज पावन पाऊँ

अव्यय, अगम, अगोचर प्रभुवर । कैसे तुम को ध्याऊँ ॥
क्या तुम अवध धाम में मिलते या वृन्दावन बन मैं प्रभु रमते ?
या सन्तों के मन मन्दिर में, कीर्तन, भजन, भक्ति में या प्रभु
या तीर्थों में तुम रमते विभु, विविध तीर्थ, मन्दिर, गुरुद्वारे ।
या रमते सत्कर्म धर्म में , या वेदों के गूढ मर्म में ।
यज्ञ, हवन, साधन में किसकोस, नाथ कृपा की जनकराज पर ।
दीन अधम केवट निषाद पर, शवरी की गति नाथ सुधारी,
दिनों के प्रभुवर हितकारी, दीन हीन मैं परम दुखारी
दुखहारी भव भजन कर्ता, नाथ शरण में दीन ''सनातन'' ।
चरण धूलि पावन सर्वस धन, परम प्रसाद सुपावन पद रज

–सनातनकुमार वाजपेयी जबलपुर

तुम बिन डर मोहे लागे श्याम ।
म्हा घोर जंगल पशु हिंसक, दहाडे, आठो याम ॥
छोड अकेला हुआ दूर क्यों, क्यों विसराया धाम ।
भूल हुई सो क्षमा कीजिए, कृपा सिन्धु भगवान ॥
अभयदान सुरता निज देकर, आप गहों मेरी बाह ।
रामस्वरूप को निजकर राखो, हे माधव घनश्याम ॥
तुम बिन कैसे जिये अब श्याम ।
गृह कारज में मन नहीं लगता, लूट्यो अमोलक दाम ।
कर को चाहिए चरण की सेवा, नैना दरश लालम ।
श्वाला गति बस सुमिरण चाहती, पलछिन आणे धाम ॥
पाव हमारे छोड जगत उठे न एको पाव ।
रामस्वरूप मन जांनथी चाहे, राधा संग घनश्याम ॥

– निम्बार्क भूषण रामस्वरूप गौड (मोखमपुर, जि. जयपुर)

सदस्य संख्या
सेवा में
श्रीमान्.............................

प्रेषक :-
वशिष्ठ वचनामृत
'हिन्दी / गुजराती' मासिक पत्रिका
गौमुख वशिष्ठाश्रम – अर्बुदाचल (आबू पर्वत)
जिला-सिरोही (राज.) पिनकोड-307 501
पो. बाक्स नं. 25. दूरभाष (02974) 224217, 202417
Internet - WWW.GAUMUKH.ORG

गौमुख वशिष्ठाश्रम (स्वामी) की ओर से मुद्रक / प्रकाशक भक्तवत्सलशरण द्वारा अरावली ऑफसेट, आबूपर्वत के लिए दुर्गा ऑफसेट, पालनपुर से केवल मुद्रित, कार्यालय : गौमुख वशिष्ठ आश्रम, अर्बुदाचल (आबूपर्वत) से प्रकाशितः संम्पादक – किशनबाबू प्रजापति